यीशु की शिक्षाएँ III

यीशु की शिक्षाएं III: पाठ्यक्रम

टिप्पणियाँ —

कक्षा #१:

I. पाठ्यक्रम परिचय।
II. उद्धारः
   क. उद्धार।

कक्षा #२:

II. उद्धारः (जारी.)
   ख. आवश्यकता।
   ग. पश्चाताप।
   घ. विश्वास।
   ङ. आज्ञाकारिता।

कक्षा #३:

III. मसीही।

कक्षा #४:

IV. परमेश्वर के साथ सम्बन्ध।

कक्षा #५:

V. कलीसिया और सेवकाई।
   परीक्षा।

यीशु की शिक्षाएँ III

टिप्पणियाँ –

यीशु की शिक्षाएं III: परीक्षा

संभावित २० बिंदुओं वाले प्रश्न

१) उद्धार में परमेश्वर के भाग को स्पष्ट करने के लिए पवित्रशास्त्र के विभिन्न संदर्भों का प्रयोग करें (पृष्ठ ९१,९२)।

२) क्या धर्मत्याग संभव है? पवित्रशास्त्र के द्वारा अपने उत्तर का बचाव करें (पृष्ठ १०२)।

३) आप ''विश्वास'' का वर्णन कैसे करेंगे? पवित्रशास्त्र के विभिन्न पदों का प्रयोग करें (पृष्ठ १०८)।

४) विश्वासी के अधिकार को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न पदों का प्रयोग करें (पृष्ठ ११९, १२०)।

५) लोगों के तीन विभिन्न समूहों को सूचीबद्ध करें जो मसीहियों को सताते हैं और प्रत्येक पर टिप्पणी करें (कोई हवाला जरूरी नहीं; पृष्ठ १२३,१२४)।

६) प्रार्थना में सफलता के लिए वचन के विभिन्न पदों का प्रयोग करें (पृष्ठ १३४)।

संभावित २० बिंदुओं वाले प्रश्न

१) उद्धार क्या है और क्या नहीं है, दो या तीन वाक्यों में परिभाषित करें (किसी हवाले की ज़रूरत नहीं_ पृष्ठ ८९, ९०)।

२) ऐसी पाँच चीजों की सूची दें जो उद्धार में हमारे भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं (कोई स्पष्टीकरण या हवाला आवश्यक नहीं पृष्ठ ९३, ९४)।

३) अच्छे कार्यों की परिभाषा का हृदय अर्थात केन्द्रबिन्दु क्या है? एक पद के द्वारा बताएं (पृष्ठ १०२)।

४) मत्ती ३:२ तथा मरकुस १:१५ का प्रयोग करते हुए इस प्रश्न का उत्तर दें: मन फिराना... किस बात का परिणाम है? (पृष्ठ १०६)।

५) विश्वास के एक मार्ग को स्पष्ट करने के लिए एक पद का प्रयोग करें (पृष्ठ १०८)।

६) लूका ११:११-१३ का हवाला देते हुए साहस को परिभाषित करें (पृष्ठ ११३)।

७) लूका १९:१२-२६ का प्रयोग करने के द्वारा एक तरीका दिखाएं जिससे आज्ञाकारिता मापी जाती है (पृष्ठ ११५)।

८) मसीही आनन्द कहाँ से आता है? यूहन्ना १५:७-११ का प्रयोग करें (पृष्ठ १२१)।

९) परमेश्वर को खोजने के एक परिणाम को एक पद के द्वारा दिखाएं (पृष्ठ १३०,१३१)।

१०) लूका १८:८ के अनुसार प्रार्थना का सहभागी क्या है? संक्षेप में बताएँ (पृष्ठ १३१)।

११) चेला बनने में आनेवाली एक अड़चन का वर्णन करें (पृष्ठ १३६)।

१२) सेवकाईयां विश्वासयोग्यता पर आधारित हैं यह दिखाने के लिए लूका १६:१० का प्रयोग करें (पृष्ठ १४०)।

यीशु की शिक्षाएँ III

I. पाठ्यक्रम परिचय।

टिप्पणियाँ —

क. यीशु की शिक्षाएं III

यीशु की शिक्षाएं पाठ्यक्रमों की श्रृंखला:

यह पाठ्क्रम तीन पाठ्यक्रमों की श्रंखला का पहला हिस्सा है जिन्हें सुसमाचारों में पाई जानेवाली यीशु की शिक्षाओं पर आधारित व्यवस्थित परमेश्वरविद्या के रूप में तैयार किया गया है। श्रंखला तीन ''क्षेत्रों'' पर आधारित है। निम्नलिख्ति तीन अध्ययन ''क्षेत्रों के आधार पर इसे तीन पाठ्यक्रमों में बाँटा गया हैः

१) परमेश्वर:
(**यीशु की शिक्षा I,** पहले इसका शीर्षक सुसामाचार के सिद्धान्त I था)।

२) संसारः
(**यीशु की शिक्षा II**, पहले इसका शीर्षक सुसामाचार के सिद्धान्त II था)।

३) मसीहियत:
(**यीशु की शिक्षाएं III**, पहले इसका शीर्षक सुसामाचार के सिद्धान्त III था)।

पाठ्यक्रम सामग्री ''सिद्धान्तों'' (विचार जो युगों से सत्य हैं) के द्वारा तैयार की गई है। इन्हें ''जंजीरों'' के रूप में व्यवस्थित किया गया है, एक सिद्धान्त की कड़ी को दूसरी से जोड़ने के द्वाराः

- सिद्धान्तों की हर जंजीर एक विषय का निर्माण करती है।
- विषयों को ''प्रसंगों'' में संगठित किया गया है।
- प्रसंगों को ''श्रेणियों'' में संगठित किया गया है।
- श्रेणियों को तीन प्रमुख ''क्षेत्रों'' का निर्माण करने के लिए संगठित किया गया है।

यद्यपि ये पाठ्यक्रम सुसमाचारों पर केन्द्रित हैं, परन्तु इन में से कुछ श्रेणियां सिर्फ सुसमाचारों तक ही सीमित नहीं हैं। उदाहरण के लिए, 'संप्रभुता' को समस्त पुराने नियम में और नए नियम में देखा जा सकता है। हालांकि हम सिर्फ नये नियम के उन बयानों पर ही ध्यान करेंगे जिन्हें सुसमाचार कहा जाता है।

याद रखें कि यह सिर्फ नये नियम के सुसमाचारों में यीशु की शिक्षाओं के सर्वेक्षण के रूप में आशयित है। हर विषय में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के अतंर्गत गहन अध्ययन सम्मलित हो सकता है। आपको प्रोत्साहित किया जाता है कि आप इस पाठ्क्रम को अपनी शिक्षा सेवकाई के लिए एक संसाधन के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।

टिप्पणियाँ –

शिक्षा सुझावः

रूपरेखा प्रवाह

रूपरेखा का प्रवाह बहुत महत्वपूर्ण है। हर बिन्दु पूर्व बिन्दु पर आधारित है। इसलिए शिक्षक के लिए महत्वपूर्ण कार्य एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु, विषय से विषय, प्रसंग से प्रसंग तथा श्रेणी से श्रेणी तक पहुँचने के प्रभावी तरीके विकसित करना है। गति का भाव पैदा करने की क्षमता बहुत महत्वपूर्ण है। अक्सर सामग्री स्वंय ही इस ''गति'' का भाव उपलब्ध कराती है। फिर भी शिक्षक को गति-परिवर्तन वाक्य और विचार जोड़ना आवश्यक है।

प्रत्येक बिन्दु को प्रस्तुत करना

प्रत्येक बिन्दु एक वचन के पद संदर्भ के द्वारा शुरू होता है। इसके पीछे एक संक्षिप्त टिप्पणी होती है जो सिद्धान्त को स्पष्ट करती है और यह भी कि यह प्रवाह में कैसे ठीक बैठता है। कभी कभी एक सिद्धान्त को दुहराया जाता है क्योंकि यह दो या अधिक विषयों के विकास को प्रभावित करता है। वचन का प्रत्येक पद कक्षा में ऊँची आवाज में पढ़ा जाना चाहिए। शिक्षक उपलब्ध टिप्पणियों का प्रयोग बिन्दु को स्पष्ट करने और यह दिखाने के लिए कर सकता है कि यह पिछले बिन्दुओं के साथ कैसे ठीक बैठता है।

कक्षा विचार-विमर्श

इस पाठ्यक्रम में सामग्री पर चर्चा करने और सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर देने के लिए विशिष्ट ''चर्चा के बिन्दु'' आवंटित नहीं किए जाएंगे। क्योंकि सभी संभावित चर्चाओं के पूर्वानुमान हेतु बहुत अधिक विषय तथा मुद्दे हैं। केवल उन्हीं सवालों और टिप्पणियों को स्वीकृति दें जो प्रस्तुतीकरण के बीच में आते हैं।

पाठ्यक्रम श्रृंखला

यदि संभव हो तो एक श्रृंखला के तीन पाठ्यक्रमों को एक के बाद एक सिखाया जाना चाहिए। एक पाठ्यक्रम की सामग्री को पूरा करने के लिए यदि पर्याप्त समय न हो तो शिक्षक अगले पाठ्यक्रम को उसी बिन्दु से आरम्भ कर सकता है जहाँ उसने पिछला पाठ्यक्रम छोड़ा था। यदि एक पाठ्यक्रम के अन्त में अतिरिक्त समय हो, तो शिक्षक दूसरे पाठ्यक्रम की सामग्री की ओर अग्रसर हो सकता है।

टिप्पणियाँ –

ख. पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु।

१. यह पाठ्यक्रम (श्रृंखला में तीसरा) चार श्रेणियों में बाँटा गया है जो उस ''क्षेत्र'' की रचना करता है जिसे ''मसीहियत'' कहा जाता है।

२. चार श्रेणियां हैंः

क. उद्धार।

ख. मसीही।

ग. परमेश्वर के साथ सम्बन्ध।

घ. कलीसिया और सेवकाई।

II. उद्धार।

क. प्रसंग #१: उद्धार।

१. विषय #१: उद्धार।

क. उद्धार हैः

१) लूका ५:२० - मसीह में विश्वास के द्वारा पापों से क्षमा मिलती है।

२) लूका ७:५० – मसीह में विश्वास के द्वारा उद्धार मिलता है। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि उद्धार पापों की क्षमा के समतुल्य है। बचाया जाना, क्षमा किया जाना है।

ख. उद्धार नहीं हैः

१) यूह. ६:५३ – मनुष्य स्वंय को नहीं बचा सकता। यीशु से अलग मनुष्य में कोई जीवन नहीं है।

२) मत्ती १८:३४ – कार्यों के द्वारा उद्धार असंभव है।

टिप्पणियाँ –

३) मत्ती १९:१७, २१ – मनुष्य स्वर्ग में प्रवेश प्राप्त करने के लिए हमेशा ''उत्तम'' बनने के तरीकों की खोज में रहते हैं।

क. हालांकि, क्योंकि केवल एक ही है जो उत्तम है इसलिए सबसे ''उत्तम'' बात हम यह कर सकते हैं कि अपने आपे का इन्कार करें और यीशु के पीछे चलें।

ख. यीशु ने इस बात से इन्कार नहीं किया कि वही वह व्यक्ति है जो उत्तम है। वास्तव में उसने कटाक्ष के रूप में अविश्वासियों को डाँटने के द्वारा यह दावा किया कि वह वही व्यक्ति है।

४) मर. १०:२७ – यदि हम सिर्फ मनुष्य और उसकी स्वतंत्र इच्छा पर निर्भर रहें तो उद्धार असंभव है। यह सिर्फ परमेश्वर के द्वारा संभव है, इस प्रकार इसका स्रोत परमेश्वर में ही है।

५) लूका ३:८ – आप मसीहियत में पैदा नहीं हो सकते। आपकी पारिवारिक विरासत या आपकी संस्कृति आपको नहीं बचा सकती। उद्धार विरासत में नहीं मिल सकता।

ग. उद्धार का महत्वः

१) लूका १०:२० – सबसे पहले, हमें यह याद रखना चाहिए कि हमारा आनन्द परमेश्वर की चिन्ह और चमत्कार करने वाली अलौकिक सामर्थ पर आधारित नहीं है, बल्कि यह परमेश्वर की उद्धार करने वाली सामर्थ पर आधारित है।

२) मत्ती १६:१८ – कलीसिया का निर्माण इस तथ्य पर हुआ है कि यीशु ही मसीह है। यह इस सत्य के प्रकाशन तथा अंगीकार पर निर्मित है। कलीसिया **उद्धार** पर बनाई गई है।

घ. उद्धार को सकरे मार्ग के द्वारा दर्शाया गया है।

१) मत्ती १९:२६ – परमेश्वर से सब कुछ संभव है। मनुष्य से उद्धार असंभव है, परन्तु परमेश्वर से यह संभव है।

२) मर. १०:२७ – यदि हम केवल मनुष्य और उसकी स्वतंत्र इच्छा पर निर्भर रहें तो उद्धार असंभव है। यह केवल परमेश्वर के द्वारा संभव है, इस प्रकार इसका स्रोत परमेश्वर में ही है।

३) मत्ती ७:१४ – स्वर्ग का मार्ग सकरा है।

टिप्पणियाँ –

लेखक की टिप्पणीः

मानवतावादी मसीहियों को ''संकीर्ण सोच वाला'' कहते हैं जिसका अर्थ ''दूसरे मतों के प्रति अहसहनशील'' होना है। यह वास्तव में एक विशेषण है (यह यूहन्ना १४:६ की स्वीकारोक्ति की ओर इशारा करता है), परन्तु मानवतावादियों के लिए यह एक झिड़की है। वे उस बात पर ध्यान लगाते हैं जो जीवन के ''बुरे'' होने की ओर ले जाती है।

४) लूका १३:२४ – उद्धार का प्रवेश द्वार एक संकरा दरवाजा है। बहुत से इस में प्रवेश करने का प्रयास करेंगे परन्तु नहीं कर सकेंगे क्योंकि दरवाजा बहुत सकरा है।

५) यूह. १४:६- यीशु के बिना परमेश्वर तक पहुँचना असंभव है। वह संकरा दरवाजा है (देखें यूह. १०:९)। वही **एकमात्र** मार्ग है।

६) मर. ४:२० - ''अच्छी भूमि'' उस भूमि को दर्शाती है जो परमेश्वर के राज्य के भेद को सुनने, स्वीकार करने, और पालन करने में समर्थ है (मर- ४:११)। परमेश्वर के राज्य का भेद यह है कि सब लोगों के उद्धार के लिए **केवल एक ही मार्ग** है (देखें इफि. ३:४-६)।

७) लूका १६:१६- पाप का एक परिणाम यह है कि परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करना आसान नहीं है। यह हमारे पापी स्वभाव के विरुद्ध है। इसलिए, हमें बलपूर्वक रास्ता बनाना है। बेशक, रास्ता सकरा है।

८) मत्ती १९:२३,२४ – धनवान लोगों के लिए प्रवेश कठिन है क्योंकि उनके पास खोने के लिए बहुत अधिक है। एक धनवान व्यक्ति के लिए अपनी सारी भौतिक वस्तुओं के साथ सकरे दरवाजे से गुजरना कठिन है।

९) लूका १८:२४-२७ - धनवान का सकरे रास्ते से प्रवेश करना वास्तव में परमेश्वर का चमत्कार है।

ङ. उद्धार में परमेश्वर का भाग।

१) यूह. १५:१६ - हम ने परमेश्वर को नहीं चुना बल्कि परमेश्वर ने हमें चुना है।

२) लूका १५:४-६ – उद्धार के संदर्भ में, परमेश्वर है जो हमें ढूँढता और घर वापस लाता है। हम परमेश्वर को नहीं ढूँढते।

टिप्पणियाँ —

३) यूह. ६:४४ - परमेश्वर सब अच्छी वस्तुओं का स्रोत है। वह उद्धार का स्रोत है। परमेश्वर ही है जो व्यक्ति को अपनी ओर खींचता है। व्यक्ति अपनी सामर्थ से नहीं आता।

४) मर. १०:२७ - परमेश्वर उद्धार का स्रोत है। यदि हम सिर्फ मनुष्य और उसकी स्वतंत्र इच्छा पर निर्भर रहें तो उद्धार असंभव है। यह केवल परमेश्वर के द्वारा संभव है, इस प्रकार इसका स्रोत परमेश्वर में ही है।

५) यूह. १:१२,१३ – हमने नया जन्म अपनी स्वतंत्र इच्छा से नहीं पाया है बल्कि परमेश्वर की इच्छा से पाया है।

क. हमारी स्वतंत्र इच्छा रचनात्मक इच्छा नहीं है। यह उसे ग्रहण या अस्वीकार करती है जिसे पहले ही रचा गया तथा प्रस्तावित किया गया है।

ख. मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा तथा परमेश्वर की संप्रभुता के अस्तित्व ने जो विरोधाभास पैदा किया है वह इसमें देखा जा सकता है कि परमेश्वर उन्हें उद्धार का अधिकार देता है जो उसे ग्रहण करते हैं, पर यह परमेश्वर की की इच्छा के अनुसार है।

६) मत्ती २२:१४ - बहुत से बुलाए (आमंत्रित) गए हैं, परन्तु थोड़े ही चुने गए हैं।

७) यूह. १७:२, ६,९ – पिता ने यीशु को ''कुछ लोग दिए'' हैं। इसका तात्पर्य चुनने के विचार से है।

८) यूह. ६:४४, ६५, ६६ - ''मनुष्य की स्वंतत्र इच्छा को परमेश्वर की संप्रभुता द्वारा शक्तिशाली तरीके से प्रभावित किया जाता है कि मनुष्य स्वतंत्र रूप से स्वीकार या अस्वीकार करे, और फिर भी परिणाम वही हो जो परमेश्वर ने पहले ही तय किया है।'' हमारी सीमित अवस्था में मनुष्य के लिए इसे पूरी तरह समझना कठिन है।

क. ऐसा लगता है कि जो लोग ''कुड़कुड़ा'' रहे थे उनको जबाब देने के संदर्भ में यीशु परमेश्वर द्वारा मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करने की आवश्यकता पर ज़ोर दे रहा था।

ख. वे इसलिए कुड़कुड़ा रहे थे क्योंकि वे यीशु के वचनों को ग्रहण नहीं कर सके। तात्पर्य यह लगता है कि यीशु यह स्पष्ट कर रहा था कि क्यों कुछ लोग उसके वचनों को ग्रहण नहीं कर सकते थे।

ग. वे उसके वचनों को इसलिए ग्रहण नहीं कर सकते थे क्योंकि उन्हें पिता के द्वारा आकर्षित नहीं किया जा रहा था।

घ. यह उद्धार के ऊपर परमेश्वर आधिपत्य की ओर संकेत करता है और वास्तव में यह परमेश्वरविद्या का बहुत विवादास्पद तथा कठिन भाग है।

टिप्पणियाँ –

च. उद्धार में हमारा भाग।

१) जो उसने पहले से उपलब्ध कराया है हमें उसे अवश्य ही **ग्रहण** करना है।

क. यूह. १:१२,१३ - हमने नया जन्म अपनी स्वतंत्र इच्छा के द्वारा नहीं परन्तु परमेश्वर की इच्छा से पाया है।

(१) हमारी स्वतंत्र इच्छा एक रचनात्मक इच्छा नहीं है। यह वह इच्छा है जो उसे स्वीकार या अस्वीकार करती है जिसे पहले ही रचा गया और प्रस्तुत किया गया है।

(२) मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा तथा परमेश्वर की संप्रभुता के अस्तित्व के बीच जो विरोधाभास है वह इस बात में दिखाई देता है कि परमेश्वर उन्हें उद्धार का अधिकार देता है जो उसे ग्रहण करते हैं, पर यह परमेश्वर की इच्छा के अनुसार है।

ख. यूहन्ना १३:८ - हम अपनी धार्मिकता को ठोकर का कारण बनने की अनुमति दे सकते हैं। स्वधार्मिकता परमेश्वर की सहायता की आवश्कता का इन्कार करती है। पतरस को इस पत्थर से ठोकर लगी। हमें इस तथ्य को स्वीकार करना आवश्यक है कि हमें परमेश्वर तथा उद्धार के लिए उसके प्रावधान की ज़रूरत है।

२) हमें यीशु को सब कुछ **देना** आवश्यक है।

क. मर. १०:२१ – अनन्त जीवन प्राप्त करना यीशु को सब कुछ देने से जुड़ा है।

ख. लूका १८:२२ - ''घटी'' का अर्थ वास्तव में चीजों को पकड़े रहना है। जिस बात की ''घटी'' है वह यह कि मनुष्य ने अपना सब कुछ दे नहीं दिया है।

३) हमें अपने आप का **इन्कार करना** आवश्यक है।

क. मत्ती १०:३९ - जीवन पाने की कुंजी यीशु के लिए अपना जीवन खोना है।

ख. मर. ८:३५ – शायद हम इसे ''उल्टा सिद्धान्त'' कहेंगे। यदि आप अपने जीवन को बचाने, उसकी रक्षा करने, और उसे पकड़े रहने का प्रयास करेंगे, तो आप अपना जीवन खो देंगे। यदि आप अपने जीवन को पकड़े नहीं रहेंगे और यीशु की खातिर अपने जीवन को देने के लिए तैयार होंगे, तो आप इसे पाएंगे (देखें मत्ती १६:२५)।

टिप्पणियाँ –

ग. मत्ती १९:१७,२१ – मनुष्य हमेशा ''अच्छा'' बनने के तरीकों की खोज में रहते हैं ताकि इसके द्वारा स्वर्ग में प्रवेश पा सकें।

१) हालांकि, क्योंकि केवल एक ही है जो अच्छा है इसलिए एकमात्र ''अच्छी'' बात हम यह कर सकते हैं कि अपने आप का इन्कार करें और यीशु के पीछे चलें।

२) यीशु ने इस बात से इन्कार नहीं किया कि वही वह व्यक्ति है जो अच्छा है; उसने कटाक्ष के रूप में अविश्वासियों को डाँटने के द्वारा वही व्यक्ति होने का दावा किया, एकमात्र ''अच्छी'' बात हम यह कर सकते हैं कि अपने आप का इन्कार करें और यीशु के पीछे चलें।

४) हमें **मन फिराना** आवश्यक है।

क. मत्ती २१:३०,३२ – परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करनेवाले और प्रवेश न करनेवालों के बीच वही अन्तर है जो सच्चे पश्चाताप और पश्चाताप की कमी के बीच है। पश्चाताप कार्य (पद ३०) और विश्वास (पद ३२) की ओर ले जाता है।

ख. मर. ४:२० - ''अच्छी भूमि'' ऐसी भूमि को दर्शाती है जो परमेश्वर के राज्य के भेद के अर्थ को सुनने, ग्रहण करने, और पालन करने समर्थ है (मर. ४:११)। परमेश्वर के राज्य का भेद यह है कि सब लोगों के उद्धार के लिए केवल एक ही रास्ता है (देखें इफि. ३:४-६)।

५) हमें **विश्वास करना** आवश्यक है।

क. मर. १६:१६ – विश्वास उद्धार की ओर ले जाता है। अविश्वास दण्ड की आज्ञा की ओर ले जाता है।

ख. लूका ५:२० और ७:५०- पापों की क्षमा उसमें विश्वास रखने से मिलती है (५:२०)। उद्धार उसमें विश्वास रखने से मिलता है (७:५०)।

ग. यूह. ८:१९,२३,२४ - उद्धार के लिए यीशु में विश्वास करने में उसके ईश्वरत्व में विश्वास शामिल है। उसके इस दावे के संदर्भ में कि वह ऊपर से (दिव्य) है और इस संसार का नहीं, वह कहता है कि जब तक मनुष्य ''मैं हूँ'' (परमेश्वर का नाम; दिव्य) में विश्वास न करें वे अपने पापों में मरेंगे।

टिप्पणियाँ –

६) हमें **आज्ञा मानना** आवश्यक है (देखें मत्ती १२:५०)। यीशु के परिवार में होना परमेश्वर की आज्ञा मानना है।

७) हमें **बच्चों की तरह** बनना आवश्यक है।

क. मत्ती ८:३ – हमारे ''बदलाव'' में बच्चे की तरह बनना शामिल होना ज़रूरी है।

ख. लूका १८:१६,१७- राज्य बच्चों के लिए है। स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने हेतु वयस्कों के लिए स्वयं को नम्र बनाकर बच्चों की तरह बनना आवश्यक है।

छ. उद्धार की प्रक्रिया।

१) यूह. ३:८ - पहले स्थान पर, नया जन्म रहस्यमय है। हम इसके प्रारंभ या गंतव्य को पूरी तरह नहीं समझ सकते।

२) लूका २:२९ - उद्धार का निर्धारण मृत्यु के बाद नहीं होता (देखें लूका १०:२०; फिलि. ४:३; इब्रा. ९:२७)।

३) यूह. १९:३०- उद्धार का कार्य पहले ही सम्पन्न हो चुका है। यह पूरा हो गया है। यीशु ने कहा ''समाप्त हुआ।'' यहाँ ग्रीक शब्द ''समाप्त होने'' का अर्थ पूर्ण होना या पूरी तरह चुकाया जाना है। अब और कोई काम आवश्यक नहीं है।

४) लूका २१:१९ - इसके साथ ही उद्धार एक प्रक्रिया है (देखें फिलि. २:१२)। इस प्रक्रिया में दृढ़ता (अन्त तक बने रहना) और धीरज शामिल है।

५) मत्ती १०:२२ - उद्धार की प्रक्रिया धीरज की दौड़ है।

ज. उद्धार की कमी।

१) मत्ती २३:३७ - मनुष्यों अनिच्छा (प्रेम की कमी) उन्हें परमेश्वर द्वारा अपनी ओर आकर्षित करने की इच्छा में बाधा बन सकती है।

२) यूह. १३:८ हम अपनी स्वंय की धार्मिकता को ठोकर का कारण बनने की अनुमति दे सकते हैं। स्वधार्मिकता परमेश्वर की सहायता की आवश्यकता का इन्कार करती है। पतरस को इसी पत्थर से ठोकर लगी। हमें इस तथ्य को स्वीकार करना आवश्यक है कि हमें उद्धार के लिए परमेश्वर तथा उसके प्रावधान की ज़रूरत है। यदि हमारे पास परमेश्वर के प्रावधान की कमी होगी तो हमारे पास उद्धार की कमी होगी।

टिप्पणियाँ –

३) मत्ती २१:३०,३२ - परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करनेवाले और प्रवेश न करनेवालों के बीच वही अन्तर है जो सच्चे पश्चाताप और पश्चाताप की कमी के बीच है। पश्चाताप कार्य (पद ३०) और विश्वास (पद ३२) की ओर ले जाता है।

४) मर. १६:१६ – अविश्वास दण्ड की आज्ञा की ओर ले जाता है। विश्वास की कमी का परिणाम उद्धार की कमी होता है।

५) यूह. ५:४४ – अपने लिए दूसरों से महिमा की खोज करने का परिणाम विश्वास करने में अक्षमता हो सकता है

२. विषय #२: क्षमा।

क. क्षमा का स्रोत।

१) मत्ती २६:२८ - नई वाचा का केन्द्रीय मुद्दा क्षमा है। सबसे ऊपर नई वाचा क्षमा की वाचा है।

२) यूह. १:२९ - यीशु **परमेश्वर** का मेम्ना है जो **जगत** के पाप उठा ले जाता है, पुराने नियम के विपरीत जिसमें **बलिदान** का मेम्ना **इस्राएल** के पाप उठा ले जाता था। यीशु पाप के लिए अन्तिम तथा पूर्ण समाधान है। वह क्षमा का स्रोत है।

३) मत्ती ९:६ - यीशु के पास पाप क्षमा करने का अधिकार है। वह स्रोत है।

४) यूह. २०:२३ - कलीसिया के पास पापों की क्षमा की घोषणा करने का अधिकार है। मसीह जो क्षमा का स्रोत है, अपनी देह के द्वारा क्षमा की घोषणा करता है।

ख. क्षमा कैसे प्राप्त करें।

१) लूका १७:३ - बिना पश्चाताप के कोई वास्तविक क्षमा नहीं है। यहाँ केवल संभावित क्षमा है।

२) लूका ५:२० – क्षमा विश्वास के द्वारा प्राप्त होती है।

३) लूका १८:१०-१४ - निर्दोष ठहराया जाना और क्षमा किया जाना परमेश्वर के सामने टूटने और दीनता से सम्बन्धित है। यह केवल परमेश्वर में भरोसा रखने तथा अपने आप में भरोसा न रखने से सम्बन्धित है। क्षमा प्राप्त करने में नम्रता अतिआवश्यक है।

टिप्पणियाँ –

४) मत्ती ६:१४,१५ - परमेश्वर से क्षमा प्राप्त करने के लिए आपको दूसरों को क्षमा करना आवश्यक है।

५) मत्ती १८:२६-२८ - यदि आपने परमेश्वर से क्षमा प्राप्त नहीं करते, तो आप दूसरों को क्षमा करने में समर्थ नहीं होंगे।

६) मर. ११:२५ - प्रार्थना में सफलता दूसरों को क्षमा करने से सम्बन्धित है।

७) मत्ती १८:२१-२७ - दूसरों को क्षमा करने की कोई सीमा नहीं होनी चाहिए। परमेश्वर हमें कितनी बार क्षमा करता है इस पर वह कोई सीमा नहीं ठहराता।

ग. क्षमा के नतीजे।

१) यूह. १:२९ - क्षमा के द्वारा सब लोगों के पास यह अवसर है कि उनके पाप उठा लिए जाएं।

२) लूका ५:२० और ७:५० – उसमें विश्वास करने से पापों की क्षमा मिलती है (५:२०)। उसमें विश्वास करने से उद्धार मिलता है (७:५०)। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि उद्धार पापों की क्षमा के समतुल्य है। बचाया जाना क्षमा किया जाना है। क्षमा का परिणाम उद्धार है।

३) मत्ती ९:२ जब हम क्षमा प्राप्त करते हैं तभी हम मजबूत, निर्भीक तथा साहसी हो सकते हैं। बिना क्षमा के हम कमज़ोर, डरपोक, तथा भयभीत होते हैं।

४) लूका ७:४०-४७ – परमेश्वर के प्रति आपका प्रेम आपकी इस समझ पर निर्भर करता है कि आपका कितना क्षमा किया गया है (आपका अनुभव कि आपको क्षमा की कितनी मात्र की **आवश्यकता** है)। क्षमा का परिणाम परमेश्वर के प्रति प्रेम है।

३. विषय #३: अपने प्रति मरना।

क. अपने प्रति मरना उद्धार के साथ किस प्रकार सम्बन्धित है

१) मत्ती १०:३९ – जीवन पाने की कुंजी अपने जीवन को मसीह की खातिर खो देना है।

२) मर. ८:३५ – हम शायद इसे ''उल्टा सिद्धान्त'' पुकारें। यदि आप अपने जीवन को बचाने, सुरक्षित रखने, और उसे पकड़े रहने का प्रयास करेंगे तो आप अपने जीवन को खो देंगे। यदि आप इस पकड़े रहने का प्रयास नहीं करेंगे और मसीह के लिए अपने जीवन को देने के लिए तैयार रहेंगे, तो आप इसे पाएंगे (देखें १६:२५)। उद्धार प्राप्त जीवन वह है जो स्वंय के प्रति मरा हुआ है।

टिप्पणियाँ —

३) यूह. १०:१७ – जीवित रहने की खातिर मरने का सिद्धान्त एक चरवाहे के जीवन में देखा जा सकता है जो भेड़ों के लिए जान देता है ताकि वह अपना जीवन वापस पा सके।

४) मत्ती ५:३ – परमेश्वर के राज्य में रहने के लिए नम्रता की आवश्यकता है। केवल नम्र ही स्वंय का इन्कार कर सकते हैं और मसीह को अंगीकार कर सकते हैं। सिर्फ नम्र ही अपने आप पर शासन करने की परीक्षा अस्वीकार कर के मसीह का शासन स्वीकार कर सकते हैं। केवल नम्र ही परमेश्वर की खातिर जीवित रहने के लिए अपने प्रति मर सकते हैं।

५) यूह. १२:२५ -अनन्त जीवन यह मांग करता है कि पहले हम इस संसार में अपने जीवन से नफरत करें।

ख. स्वयं का इन्कार करना।

१) मत्ती १६:२४ और मर- ८:३४ – मसीह के पीछे चलने में स्वंय का इन्कार करना तथा अपना क्रूस उठाना शामिल है।

२) मत्ती १९:१७,२१- मनुष्य हमेशा ''अच्छे'' बनने के तरीकों की खोज में रहते हैं ताकि स्वर्ग प्रवेश अर्जित कर सकें।

क. बहरहाल, क्योंकि सिर्फ एक ही है जो अच्छा है, एकमात्र ''अच्छी'' बात हम यह कर सकते हैं कि स्वयं का इन्कार करें और मसीह के पीछे चलें।

ख. मसीह ने इस बात से इन्कार नहीं किया कि वही वह व्यक्ति है जो पर्याप्त रूप में अच्छा है; उसने वास्तव में कटाक्ष के रूप में अविश्वासियों को डाँटने के द्वारा इस बात का दावा किया कि वही वह व्यक्ति है।

३) मत्ती १९:२१ - स्वयं का इन्कार करना स्वर्ग में खजाने की ओर अग्रसर करता है।

४) यूहन्ना ५:३० – यीशु हमें दिखाता है कि अपने आप का इन्कार कैसे करना है। वह हमारा नमूना है। उसने अपनी इच्छा पूरी नहीं की बल्कि पिता की इच्छा की खोज की।

टिप्पणियाँ —

ग. शरीर का इन्कार करना

१) मत्ती ११:१२ – परमेश्वर का राज्य बलपूर्वक आगे बढ़ता है क्योंकि इसका एक शक्तिशाली प्रतिद्वंदी है, और बलवान लोगों को इसे बलपूर्वक लेना चाहिए क्योंकि उनका एक प्रतिद्वंदी है (विशेष रूप से उनका शरीर)। १ कुरि. ९:२७ के आशय पर विचार कीजिए।

२) यूह. १५:२ – मृत्यु की एक सतत प्रक्रिया है जिसके द्वारा परमेश्वर हमारे अन्दर कार्य करता है। मृत्यु का स्थान जीवन ले लेता है। हमारे जीवनों के वे क्षेत्र जो फल लाते हैं उन्हें लगातार छाँटा जाता है ताकि और फल पैदा हों। परमेश्वर उन चीजों को काटता (मारता) है जिनकी आवश्यकता हमारे जीवनों में नहीं है।

३) यूह. २:१४-१६ – मसीह को उन लोगों के विरुद्ध पवित्र क्रोध आया जो मन्दिर को अपने स्वार्थी हितों और फायदे के लिए प्रयोग कर रहे थे। मसीही अब परमेश्वर का मन्दिर हैं (१ कुरि. ३:१६)। परमेश्वर का पवित्र क्रोध हमारे विरुद्ध भी जलता है यदि हम अपने जीवनों (मन्दिरों) को अपने स्वार्थी हितों और फायदे के लिए प्रयोग करते हैं। हमें अपने शरीरों को परमेश्वर का मन्दिर बनाना आवश्यक है न कि शारीरिक मन्दिर जो कि वे स्वभाव से ही हैं।

४) लूका ९:५७,५८ – मसीह के पीछे चलना कुछ भी न रखने के लिए तैयार रहना है। जो कुछ आपका अपना है उसे भी न रखने के लिए तैयार रहना है। सब कुछ परमेश्वर का है। शरीर का अधिकार किसी वस्तु पर नहीं है।

घ. बलिदान।

१) लूका १४:२७ – जो कोई अपना क्रूस न उठाए (बलिदान न हो) और यीशु के पीछे न चले वह उसका चेला **नहीं हो सकता।**

२) मत्ती १९:२१ – यीशु की खातिर बलिदान होने का परिणाम बहुत अधिक प्राप्त करने के रूप में होता है।

३) मर. १०:३० – यीशु के लिए बलिदान होने का परिणाम सताव के साथ बहुत अधिक प्राप्त करने के रूप में होता है।

४) मर. १०:२८-३१ – पिछलों के पहले होने का विचार सब कुछ छोड़कर यीशु (बलिदान) की आज्ञा मानने के संदर्भ में स्थापित किया गया है। संसार में सब कुछ छोड़ने का परिणाम संसार में अन्त में होना है। बहरहाल, आप परमेश्वर के राज्य में पहले होंगे। जो हर वस्तु को थामते हैं वे इस जीवन में आगे हो सकते हैं, परन्तु आने वाले युग में अन्तिम होंगे।

टिप्पणियाँ –

ड. अपने अधिकारों का त्याग करना।

१) लूका ६:३० – दूसरों के प्रति निस्वार्थता एक उच्च नियम को प्रर्दशित करती है बजाए उसके जिसे हम ''निष्पक्षता'' कहते हैं (देखें १ कुरि ६:७,८)। यहाँ हम शायद यह नतीजा निकालें कि हम किसी भी कीमत पर ''न्याय'' की मांग नहीं कर सकते। उच्च नियम अपने अधिकारों को त्याग देना है। यह पहाड़ी उपदेश का मुख्य विषय है (मत्ती ५-७)।

२) मत्ती ५:३९-४२ – बुराई के प्रति हमारा प्रतिउत्तर उस प्रतिक्रिया के विपरीत होता है जो संसार की होती है। संसार सक्रिय रूप से बुराई का प्रतिरोध करता है। मसीही सक्रिय (वे बुराई के प्रति केवल तटस्थ नहीं होते) रूप ''दूसरा गाल फेर देते हैं।''

३) मत्ती ५:५ – पृथ्वी को वश में करने के लिए दिया गया है (देखें उत्प- १:२८)। तो भी, यह आज्ञा (यीशु के जीवन के समान) आक्रामकता जैसी नहीं है। बजाए इसके हम नम्रता के द्वारा पृथ्वी के अधिकारी होते हैं। यानि जब हम अपने अधिकार छोड़ देते हैं तब पृथ्वी पर अधिकार प्राप्त करते हैं।

च. क्रूस का जीवन जीना।

१) मत्ती १०:३८ – अपना क्रूस उठाना यीशु के पीछे चलने का अतिआवश्यक भाग है, जो आपके लिए पहले ही क्रूस उठा चुका है (क्रूस उठाना, क्रूस उठानेवाले के पीछे चलने का भाग है)।

२) लूका १४:२६,२७ – जो कोई अपना क्रूस नहीं उठाता (बलिदान नहीं बनता) और यीशु के पीछे नहीं चलता उसका चेला नहीं हो सकता।

छ. पूर्णतया समर्पित जीवन जीना।

१) मत्ती १६:२६ और मर- ३६,३७ – अनन्तकाल के महत्व के आगे बाकी सारी चीजें अपेक्षाकृत महत्वहीन होनी चाहिए। परमेश्वर के प्रति हमारी प्रतिबद्धता इस सत्य के प्रति हमारी समझ पर निर्भर करती है। हम इस पर कितना विश्वास करते हैं, यह इस पर निर्भर करती है।

क) परमेश्वर के प्रति हमारी प्रतिबद्धता की मात्र तथा गुणवत्ता हमारे विश्वास की मात्र तथा गुणवत्ता पर निर्भर करती है।

ख) संसार के प्रति आपकी प्रतिबद्धता की मात्र आपके सन्देह की मात्र पर निर्भर करती है।

टिप्पणियाँ –

ग) यदि हमारे अन्दर कोई सन्देह न हो, तो हम तर्कसंगत रूप से सब कुछ दे देंगे ताकि हम अनन्त जीवन के लक्ष्य की ओर बढ़ सकें। हम ''अपना सब कुछ'' देंगे यह जानते हुए कि इसमें गलत होने का कोई जोखिम नंहीं है (हम जानते हैं कि अन्त में हम देखेंगे कि जिस पर हमने विश्वास किया वह वास्तव में सत्य था)।

घ) विश्वासी समर्पित लोग होते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि इसमें कुछ भी खोने का कोई जोखिम नहीं है। आपके विश्वासी जीवन के बारे में निराश होने या पछताने का कोई जोखिम नहीं है। सन्देह पछतावे के भय की ओर अग्रसर करता है। पछतावे का भय हमें इस संसार में सन्तुष्टि और आराम पाने के प्रयास को हमारी प्राथमिकता बनाने की ओर ले जाता है कि यदि हम मरें और हमें यह अहसास हो कि हमारा विश्वास सत्य नहीं था।

ङ) इस तरह अनन्त जीवन के महत्व में विश्वास की कमी का परिणाम परमेश्वर के प्रति हमारी प्रतिबद्धता की कमी के रूप में होता है।

२) लूका १८:२९,३० – एक व्यक्ति परमेश्वर के प्रति जितना अधिक समर्पित होता है वह उतना अधिक परमेश्वर को जानता है (ध्यान दीजिए कि यूह. १७:३ के अनुसार अनन्त जीवन का प्रतिफल परमेश्वर को जानना है)।

३) मत्ती २०:२१,२२ – आनेवाले जीवन में मिलनेवाले प्रतिफल का सीधा सम्बन्ध हमारे इस जीवन के कार्यों के साथ है। अनन्तकाल में हमारी स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि हम इस जीवन में क्या करते हैं। हम ऐसा कह सकते हैं कि आप यहाँ पर जितना (अपनी) मृत्यु का अनुभव करते हैं, वहाँ पर आप उतना ही जीवन का अनुभव कर पाएँगे।

ज. ऐसा जीवन जीना जो दूसरों को आदर दे।

१) लूका ६:३१ – दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा आप अपने लिए चाहते हैं। अपने बजाए दूसरों को प्राथमिकता दें (देखें फिलि.: ३, ४)।

२) लूका ६:३० – दूसरों के प्रति निस्वार्थता एक उच्च नियम को प्रर्दशित करती है बजाए उसके जिसे हम ''निष्पक्षता'' कहते हैं (देखें १ कुरि. ६:७,८)। यहाँ हम शायद यह नतीजा निकालें कि हम किसी भी कीमत पर ''न्याय'' की मांग नहीं कर सकते। उच्च नियम अपने अधिकारों को त्याग देना है। यह पहाड़ी उपदेश का मुख्य विषय है (मत्ती ५-७)।

टिप्पणियाँ –

३) मत्ती १०:४५ – राज्य में महान होने के लिए आपको सेवा करनी होगी। इस सेवा में दूसरों के लिए अपने जीवन को छुड़ौती बनाने के लिए इच्छुक होना शामिल है। आपका जीवन दूसरों के लिए छुड़ौती है। यानि इसमें दूसरों के लिए अपना जीवन देने की इच्छा शामिल है।

४) यूह. २१:१५- यीशु के लिए हमारा प्रेम उसके लोगों के लिए अपना जीवन देने की हमारी इच्छा से मापा जा सकता है (यूह. १५:१३ भी देखें)।

४. विषय #४: अच्छे कार्य और योग्यता।

क. यूह- ६:२९ – यीशु के अनुसार अच्छे कार्य यीशु पर विश्वास करने और भरोसा करने के अनुसार हैं।

ख. मत्ती २२:८ – हमारी योग्यता परमेश्वर की बुलाहट (उसके पास आना या न आना) के प्रति हमारे जबाब पर निर्भर करती है।

५. विषय #५: धर्मत्याग।

क. लूका ८:१३ – इस दृष्टान्त में दूसरे समूह के लोगों ने ग्रहण किया और विश्वास किया, फिर वे गिर गए। यह धर्मत्याग का एक उदाहरण है।

ख. यूह. १०:२८ – एक धर्मशास्त्रीय अवधारणा है जिसे ''सनातन सुरक्षा'' (किसी का उद्धार परमेश्वर के संप्रभु अनुग्रह के अन्तर्गत स्थाई मामला है) कहा जाता है। यह इस भाव से सही है कि केवल आप के अलावा और कोई आपको मसीह का इन्कार करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। एक सच्चा मसीही मसीह का इन्कार करने का चुनाव करे यह बहुत ही असंभाव्य है।

ग. मर. १४:२१ – यदि यहूदा कभी मजबूत विश्वासी था तो वह वास्तव में धर्मत्याग का एक उत्कृष्ट उदाहरण है (मत्ती १३:२०-२२)। (यूह. ६:७० के निहितार्थ पर विचार करें)। उसकी अनन्तकालीन परिस्थिति के सम्बन्ध में हम सिर्फ इन शब्दों के प्रत्यक्ष आशय का हवाला दे सकते हैं, ''उसके लिए यही भला होता कि वह पैदा नहीं हुआ होता।''

घ. यूह. १७:९,१२ और यूह- १०:२८ – अन्त में हम कह सकते हैं कि धर्मत्याग संभव है (यूह. १७:९,१२), परन्तु इसकी संभावना बहुत कम है (यूह १०:२८)।

टिप्पणियाँ —

ख. प्रसंग #२: आवश्यकता।

१. विषय #१: आवश्यकता।

क. मनुष्य को परमेश्वर की आवश्यकता।

१) यूह. ६:५३ – मनुष्य अपने आप को नहीं बचा सकता। यीशु से अलग मनुष्य स्वयं कोई जीवन नहीं है। उसे परमेश्वर की **बेहद** ज़रूरत है।

२) यूह. १५:५ – यीशु के बिना मनुष्य असहाय है। मनुष्य को परमेश्वर की आवश्यकता कुल और पूर्ण रूप से है।

ख. आवश्यकता का ज्ञान।

१) लूका १९:१० – यीशु उनके लिए आया जो खोए हुए थे (जरूरदतमंद थे)।

२) लूका ४:१८ और ५:३१,३२ – यीशु की सेवकाई उन लोगों के लिए है जो ज़रूरत में हैं। इसलिए मसीह से प्राप्त करने के लिए हमें अपनी ज़रूरत का ज्ञान होना चाहिए। हमें यह स्वीकार करना आवश्यक है कि हम बेहद ज़रूरतमंद लोग हैं।

३) लूका ६:२०,२१ – आशीष उन्हें मिलती है जो ज़रूरतमंद हैं क्योंकि यीशु ज़रूरत पूरी करता है।

४) यूह. ९:४१-पाप आपकी आवश्यकता की पहचान की कमी के साथ घनिष्ठ रूप में जुड़ा है। यानि यह ''टूटेपन'' की कमी और दीनता के साथ सम्बन्धित है। हमारी सबसे बड़ी ज़रूरत यह देखना है कि हमें परमेश्वर की ज़रूरत है।

५) लूका १४:१८-२१ – जो आवश्यकता में हैं उनके पास जाएं क्याेंकि वे प्रतिउत्तर देंगे, यह सिद्धान्त उन लोगों के हवाले के संदर्भ से स्थापित हुआ है जो अपनी आवश्यकता को नहीं समझते, इसलिए निरर्थक बहाने बनाते हैं।

६) लूका ७:४०-४७ – परमेश्वर के लिए आपका प्रेम आपकी इस समझ पर निर्भर करेगा कि आपका कितना क्षमा हुआ है (यानि यह समझ कि आपको क्षमा की कितनी मात्र की **आवश्यकता** है)।

७) यूह. १३:८- हम अपनी स्वंय की धार्मिकता को ठोकर का कारण बनने की अनुमति दे सकते हैं। स्वधार्मिकता परमेश्वर की सहायता की आवश्यकता का इन्कार करती है। पतरस को इस पत्थर से ठोकर लगी। हमें इस तथ्य को स्वीकार करना आवश्यक है कि हमें उद्धार के लिए परमेश्वर तथा उसके प्रावधान की आवश्यकता है। जो यह नहीं देख सकते कि वे आवश्यकता में हैं यीशु के साथ उनका ''कोई भाग नहीं होगा।''

टिप्पणियाँ –

८) यूह. ९:३९-४१ – जो यह कहते हैं कि उन्हें कोई आवश्कता नहीं है (वे कहते हैं कि वे देखते हैं) उनकी आवश्यकताएं पूरी नहीं होंगीं (वे अन्धे रहेंगे)। जो यह कहने के लिए तैयार हैं कि उन्हें ज़रूरत है (वे कहते हैं कि वे देख नहीं सकते) उनकी जरूरतें पूरी होगी (वे आगे को अन्धे नहीं रहेंगे)। सच्चाई यह है कि हम सब अन्धे हैं। अन्तर केवल यह है कि हम इसे स्वीकार करते हैं या नहीं। जो स्वीकार करते हैं उनकी सहायता की जाएगी। हमारी अपनी आवश्यकता का ज्ञान सहायता प्राप्त करने की पहली शर्त है।

९) मत्ती ९:१२ – जो स्वस्थ हैं (वे कहते हैं कि उन्हें कोई ज़रूरत नहीं) उन्हें वैद्य की ज़रूरत नहीं है (उन्हें सहायता नहीं मिलती)। जो बीमार हैं (जिन्हें अपनी ज़रूरत का ज्ञान है और वे उसे स्वीकार करते हैं) उन्हें वैद्य की ज़रूरत है (उन्हें सहायता मिलती है)।

ग. परमेश्वर आवश्यकता पूरी करता है

१) लूका १०:४-७ – मजदूर अपनी मजदूरी का हकदार है। सेवकों को यह समझना आवश्यक है कि यह उनके लिए बड़ी तनख्वाह प्राप्त करने को न्यासंगत ठहराने का तरीका नहीं है। बल्कि यह विचार इस संदर्भ में है कि जब सेवक सेवा के लिए जाए तो अपने साथ अपना **कुछ भी न** रखे। यहाँ विचार यह है कि एक सेवक अपनी **जरूरतें** पूरी करने का हकदार है (''खाना और पीना'' शब्दों पर ध्यान दें)।

२) लूका १२:३१-३३ – राज्य की शिक्षा यहाँ पृथ्वी पर धन-संपत्ति रखने से सम्बन्धित नहीं है। यह हमारी जरूरतें पूरी होने से सम्बन्धित है (पद ३१)।

३) लूका १२:११,१२ – परमेश्वर हमें आवश्यकता के समय तुरन्त सिखाने में सक्षम है।

टिप्पणियाँ –

घ. दूसरों की आवश्यकताएं।

१) लूका १०:२९-३७ – हमारा पड़ौसी कौन है इसकी परिभाषा को सीमित करने के द्वारा हम अक्सर अक्सर अपने आपको धर्मी ठहराने का प्रयास करते हैं। बहरहाल, यीशु हमें स्पष्ट परिभाषा उपलब्ध कराता है जिसकी सीमा बहुत विस्तृत है। हमारा पड़ौसी हर वह व्यक्ति है जिसे दया की आवश्यकता है। मसीही होने के कारण हमें दूसरों की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए। हम किसका पड़ौसी बनना चाहते हैं?

२) लूका १०:३८-४२ – सच्ची सेवा वह नहीं है जो **आप** चुनते हैं (शर्तों के साथ सेवा), परन्तु जो आवश्यक है और जिसकी आज्ञा दी गई है (बिना शर्त सेवा)।

ङ. सेवकाई में आवश्यकताएं।

१) लूका १०:२ – प्रार्थना वह प्रतिक्रिया है जिसकी सिफारिश उपलब्ध गवाहों और प्रचारकों की वास्तविक ज़रूरत के बीच असन्तुलन के लिए की जाती है।

२) लूका १४:१८-२१ – जो आवश्यकता में हैं वे एक सेवक की प्राथमिकता में हैं।

२. इस प्रसंग के अन्तर्गत केवल एक ही विषय है।

ग. प्रसंग #३: पश्चाताप।

१. विषय #१: पश्चाताप।

क. पश्चाताप हैः

१) मर. १:१-४ – पश्चाताप वह है जो प्रभु का मार्ग तैयार करता है।

२) मत्ती ३:८ – पश्चाताप में शब्दों के अतिरिक्त और बहुत कुछ शामिल है। इसमें परिणाम शामिल है।

३) लूका ३:८-१० – पश्चाताप के पीछे फल (या जीवन) आता है। जिस पश्चाताप का परिणाम फल नहीं होता वह नाश हो जाता है।

टिप्पणियाँ –

ख. पश्चाताप का महत्व

१) लूका १७:३ - पश्चाताप के बिना कोई वास्तविक क्षमा नहीं है। यहाँ केवल संभावित क्षमा है।

२) मत्ती १६:१९ परमेश्वर के राज्य की कुंजी अंगीकार है (जिसमें पश्चाताप शामिल है)। इस संदर्भ में पश्चाताप अपने आपको बचाने की कोशिश से करना है और अपने लिए एक उद्धारकर्ता (मसीहा) की आवश्यकता को पहचानना है।

३) मर. ४:२० - ''अच्छी भूमि'' पश्चातापी भूमि है जो परमेश्वर के राज्य के भेद के आशय को सुनने, ग्रहण करने, और पालन करने में सक्षम है (मर. ४:११)। पश्चाताप अति आवश्यक है।

ग. पश्चाताप परिणाम हैः

१) मत्ती ३:२ और मर. १:१५ – परमेश्वर के राज्य की निकटता के प्रति उचित प्रतिक्रिया पश्चाताप करना है। पश्चाताप का सार राज्य की नजदीकी है।

२) यानि, पश्चाताप इस अहसास का परिणाम है कि यीशु आपके नजदीक है।

घ. पश्चाताप के उदाहरण।

१) लूका १९:८ – पश्चाताप का सरोकार रुपए-पैसे से हो सकता है।

२) लूका ३:१०-१४ – पश्चाताप के कार्य में तरस खाना और उदारता (पद ११), दूसरों के प्रति सत्यनिष्ठा (पद १३), और न्याय (पद १४) शामिल है। ये सभी मामले भौतिक चीजों में दिलचस्पी की कमी तथा सामाजिक न्याय पर केन्द्रित हैं।

टिप्पणियाँ –

ङ. पश्चाताप के प्रति परमेश्वर का प्रतिउत्तर।

१) मत्ती १२:२० – परमेश्वर की दया महान है। आपको आशीषित करने में समर्थ होने के लिए परमेश्वर को आपसे बहुत अधिक प्रतिउत्तर की आवश्यकता नहीं है। जैसा सदोम के साथ था इसके लिए एक ''सुलगती हुई बत्ती'' ही काफी है। वह उसे नहीं बुझाएगा। उसकी महान दया उसे पश्चाताप के छोटे से छोटे संकेत का जबाब देने का अवसर देती है।

२) लूका १५:७ - जब हम पश्चाताप करते हैं तो परमेश्वर आनन्दित होता है। जब हम अपनी धार्मिकता का दावा करते हैं तब वह आनन्दित नहीं होता।

३) लूका १५:७-१०- जब एक पापी पश्चाताप करता है तो स्वर्ग में आनन्द होता है।

२. विषय #२: टूटापन।

क. यूह. ९:४१ - पाप आपकी आवश्यकता की पहचान की कमी के साथ निकट रूप से जुड़ा है। यानि यह ''टूटेपन'' की कमी और नम्रता से सम्बन्धित है। हमारी सबसे बड़ी ज़रूरत यह देखना है कि हमें परमेश्वर की ज़रूरत है।

ख. मत्ती २१:४४ - यीशु को ग्रहण करने की प्रक्रिया ''टूटने'' की प्रक्रिया है। यीशु को ग्रहण करने के बाद वह हमें बार बार ''तोड़ता'' है जब वह हमें अपने स्वरूप में बदलता है।

ग. यूह. १३:८ - हम अपनी स्वंय की धार्मिकता को ठोकर का कारण बनने की अनुमति दे सकते हैं। स्वधार्मिकता परमेश्वर की सहायता की आवश्यकता का इन्कार करती है। पतरस को इस पत्थर से ठोकर लगी। हमें इस तथ्य को स्वीकार करना आवश्यक है कि हमें उद्धार के लिए परमेश्वर तथा उसके प्रावधान की आवश्यकता है। जो यह नहीं देख सकते कि वे आवश्यकता में हैं यीशु के साथ उनका ''कोई भाग नहीं होगा।'' हमें पूर्ण बनाने के क्रम में पहले तोड़ा जाना आवश्यक है (देखें मत्ती २१:४४)।

घ. लूका १८:१०-१४ - निर्दोष ठहराया जाना और क्षमा किया जाना परमेश्वर के आगे नम्रता और टूटेपन से सम्बन्धित है। यह केवल परमेश्वर में भरोसा रखने तथा अपने आप में भरोसा रखने से इन्कार करने से सम्बन्धित है। क्षमा प्राप्त करने में नम्रता और टूटापन अतिआवश्यक है।

टिप्पणियाँ —

घ. प्रसंग #४: विश्वास।

१. विषय #१: विश्वास।

क. विश्वास हैः

१) यूह. ६:२९ - यीशु के अनुसार अच्छे कार्य विश्वास के अनुसार परिभाषित हैं।

२) मर. ११:२४ - उस व्यक्ति के लिए विश्वास की कोई सीमा नहीं है जो परिणाम देखने से पहले ही विश्वास करता है। विश्वास उन वस्तुओं का प्रमाण है जो अभी दिखाई नहीं दी हैं (देखें इब्रा. ११:१)।

३) लूका १७:६-१० - अपने आपको अयोग्य दास जो किसी भी वस्तु को पाने का पात्र नहीं है, मानने के लिए विश्वास की ज़रूरत है। यह शायद वही है जिसका हवाला ''राई के दाने के बराबर विश्वास'' के रूप में दिया गया है। ऐसा विश्वास जो हमें अपने आपको राई के दाने (सबसे छोटा) के बराबर देखने में समर्थ बनाता है, यही पहाड़ों को हटा सकता है।

४) यूह. ८:१९,२३,२४- यीशु पर विश्वास रखने में यह भी शामिल है कि हमें यह विश्वास हो कि वह परमेश्वर है। अपने इस दावे के संदर्भ में कि वह ऊपर से (दिव्य) है और इस संसार का नहीं, वह कहता है कि जब तक लोग ''मैं हूँ पर विश्वास'' (परमेश्वर का नाम_ दिव्य) न करें वे अपने पापों में मरेंगे।

५) लूका ७:९ - विश्वास तब साबित होता है जब आप यीशु को परमेश्वर का भेजा हुआ मानकर कार्य करते हैं।

ख. विश्वास को विकसित करना।

१) मत्ती १४:२६-३१ - विश्वास यीशु पर केन्द्रित रहने (सिर्फ उसी को देखने) से जुड़ा हुआ है। सन्देह यीशु से दूर देखने और अपनी परिस्थितियों तथा अपने चारों ओर की वस्तुओं पर ध्यान केन्द्रित करने से जुड़ा है।

२) मत्ती २१:३२ - पछतावा विश्वास की ओर ले जाता है।

३) मत्ती १७:२०,२१ - प्रार्थना और उपवास से विश्वास पैदा हो सकता है या दिखाई दे सकता है।

टिप्पणियाँ –

ग. विश्वास के परिणाम

१) उद्धार।

क) लूका ७:५० - उद्धार विश्वास का एक परिणाम है।

ख) मर. १६:१६ - विश्वास उद्धार की ओर अग्रसर करता है।

ग) यूह. ३:३६ - यीशु में विश्वास का परिणाम अनन्त जीवन है।

२) पवित्रीकरण।

क) मत्ती १६:२६ और मर- ८:३६,३७ – अनन्तकाल के महत्व के आगे बाकी सब वस्तुएं अपेक्षाकृत रूप से महत्वहीन होनी चाहिए। परमेश्वर के प्रति हमारी प्रतिबद्धता इस सत्य के प्रति हमारी समझ पर निर्भर करती है। यह इस बात पर निर्भर करती है कि हम इस पर कितना विश्वास करते हैं।

१) परमेश्वर के लिए आपके समर्पण की मात्र और गुणवत्ता आपके विश्वास की मात्र और गुणवत्ता पर निर्भर करती है।

२) संसार के प्रति आपके समर्पण की मात्र आपके सन्देह की मात्र पर निर्भर करती है।

३) यदि हमारे अन्दर कोई सन्देह न हो तो हम तर्कसंगत रूप से सब कुछ दे देंगे ताकि हम अनन्त जीवन के लक्ष्य की ओर बढ़ सकें। हम ''अपना सब कुछ देंगे'' यह जानकर कि इसमें गलत होने का कोई जोखिम नहीं है (यह जानते हुए कि अन्त में हम देखेंगे कि हमने जिस पर विश्वास किया वह वास्तव में सत्य था)।

४) विश्वासी समर्पित लोग होते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि इसमें कुछ भी खोने का कोई जोखिम नहीं है। आपके विश्वासी जीवन के बारे में निराश होने या पछताने का कोई जोखिम नहीं है। सन्देह पछतावे के भय की ओर अग्रसर करता है। पछतावे का भय हमें इस संसार में सन्तुष्टि और आराम पाने के प्रयास को हमारी प्राथमिकता बनाने की ओर ले जाता है कि यदि हम मरें और हमें यह अहसास हो कि हमारा विश्वास सत्य नहीं था।

५) इस प्रकार, अनन्त जीवन के महत्व में विश्वास की कमी का परिणाम परमेश्वर के प्रति समर्पण की कमी के रूप में होगा।

टिप्पणियाँ —

३) प्रार्थना।

क) लूका १८:८ - सिलसिलेवार प्रार्थना विश्वास का परिणाम है।

ख) मत्ती २१:२१,२२- प्रार्थना का उत्तर विश्वास का परिणाम है।

४) आश्चर्यकर्म।

क) मर. ५:३४ - विश्वास का परिणाम चंगाई हो सकता है।

ख) लूका १७:६ - विश्वास का परिणाम आश्चर्यकर्म हो सकता है।

ग) मर. ९:२३ - विश्वास के द्वारा सब कुछ किया जा सकता है।

घ. विश्वास और चंगाई।

१) मत्ती ९:२२ - विश्वास और चंगाई साथ साथ चलते हैं।

२) मत्ती ९:२८,२९ - यीशु जानता था कि चंगाई के लिए विश्वास ज़रूरी है, इसलिए वह चंगाई प्राप्त करनेवाले के विश्वास के अनुसार प्रार्थना करता था। जब किसी के लिए प्रार्थना की जाती है प्राप्तकर्ता को विश्वास करने की चुनौती दी जानी चाहिए और चंगाई के लिए प्रार्थना चंगाई पानेवाले के विश्वास से सम्बन्धित होनी चाहिए।

३) लूका १८:४१,४२ - यीशु ने लोगों को स्पष्ट करने की चुनौती दी कि वे क्या चाहते थे। वह उनको उत्तर देता है जिन्हें विश्वास है।

ङ. विश्वास और प्रार्थना।

१) मत्ती २१:२१,२२ - प्रार्थना का उत्तर विश्वास का परिणाम है।

२) मर. ११:२४ – आपकी प्रार्थना के सम्बन्ध में विश्वास सफलता की कुंजी है।

३) लूका १८:८ - सिलसिलेवार प्रार्थना विश्वास का परिणाम है।

टिप्पणियाँ —

च. सन्तुलन।

१) यूह. ११:३९,४०- विश्वास सिर्फ मान लेना नहीं है। यह परमेश्वर के वचन पर आधारित है। यह समझ हमें विश्वास की समझ में सन्तुलित रखती है।

२) लूका २२:४२ - यीशु ने इस वाक्यांश का प्रयोग कियाः ''यदि यह तेरी इच्छा हो।'' कुछ लोगों ने इसे गलत रूप में सिखाया कि ऐसी प्रार्थना में निश्चितता की कमी है। वे कहते हैं कि यह विश्वास की कमी को दिखाता है। क्या यीशु में विश्वास कम था?

३) मर. १४:३६-३९ - कुछ शिक्षाएं कहती हैं कि जो कुछ आप चाहते हैं उसे प्रार्थना के द्वारा प्राप्त करना मजबूत विश्वास के बराबर है। बहरहाल, हमें सावधान (सन्तुलित) रहना चाहिए। इस तरह की सोच के अन्तर्गत यीशु कभी भी क्रूस पर नहीं गया होता। उसने असल में ''इस कटारे'' को हटाने के लिए प्रार्थना की। ध्यान दें कि उसने यह प्रार्थना इस संदर्भ में की कि ''परमेश्वर से सब कुछ संभव है'' (विश्वास का संदर्भ)। यदि परमेश्वर से सब कुछ संभव है तो यीशु ने अपने विश्वास को क्यों यह विश्वास करने के लिए प्रयोग नहीं किया कि ''यह कटोरा'' उस पर से हटा लिया जाएगा?

क) पहला, क्योंकि ''परमेश्वर से सब कुछ संभव है'' इसे अक्सर इस संदर्भ में रखा गया है परमेश्वर हमें कठिनाइयों में से होकर गुजरने में सक्षम बनाता है बजाए सीधे सीधे हमें **उनसे** छुड़ाने के (देखें फिलि- ४:१२,१३)।

ख) दूसरा, क्योंकि कभी कभी आज्ञाकारिता का विश्वास से पहले आना और उसका स्थान लेना आवश्यक है। यीशु का विश्वास परमेश्वर की इच्छा पूरी होने पर निर्भर था। यह आज्ञाकारिता पर आधारित था न कि उसकी अपनी इच्छाओं पर या इस पर कि उसकी समझ में क्या अच्छा था। यह हमारे लिए एक बड़ा सबक है जबकि आज विश्वास की शिक्षा बहुत असन्तुलित और चरम बन गई है।

छ. विश्वास से आगे (भरोसा)।

१) लूका १८:१०-१४ - भरोसा विश्वास से आगे जाता है यह इस भाव से कहा जा सकता है कि विश्वास किसी बात पर होता है जबकि भरोसा तब भी विश्वास करता है जब विश्वास करने के लिए कुछ नहीं होता।

२) भरोसा अपना निश्चय परमेश्वर में रखता है बजाए मनुष्य के। भरोसा परमेश्वर को पुकारता है बजाए अपने ऊपर आश्रित रहने के।

टिप्पणियाँ —

ज. विश्वास की कमी।

१) विश्वास की कमी के कारण।

क) मत्ती १४:२६-३१ – विश्वास यीशु पर केन्द्रित होने (सिर्फ उसी को देखने) से जुड़ा है। सन्देह यीशु से परे देखने और परिस्थितियों या जो चीजें आपके चारों ओर हैं उन पर केन्द्रित होने से जुड़ा है।

ख) यूह. ५:४४ – दूसरों से अपने लिए महिमा की खोज करने का परिणाम विश्वास करने में अक्षम हो सकता है।

२) विश्वास की कमी बाधा हैः

क) मत्ती १३:५८ - अविश्वास आश्चर्यकर्मों में रुकावट बनता है।

ख) मत्ती १७:२०,२१ और लूका ९:४१- विश्वास की कमी दुष्टात्मा को निकालने की हमारी क्षमता में रुकावट हो सकती है।

ग) मत्ती २१:२१,२२- विश्वास की कमी प्रार्थना में बाधा बनती है।

३) विश्वास की कमी के परिणाम।

क) यूह. १६:८,९ - विश्वास की कमी का सबसे बुनियादी परिणाम पाप है।

ख) मत्ती १६:२६ और मर. ८:३६,३७- विश्वास की कमी का परिणाम संसार अभिलाषाओं और तरीकों के प्रति समर्पण होता है।

ग) मर. १६:१६ - विश्वास की कमी दोषी ठहराए जाने की ओर ले जाती है।

घ) यूह. ३:१८ - विश्वास की कमी का दण्डाज्ञा होता है।

ङ) यूह. ३:३६ - विश्वास की कमी का परिणाम परमेश्वर के प्रकोप के रूप में होता है।

टिप्पणियाँ —

२. विषय #२: निश्चय।

क. लूका ११:११-१३ - एक सांसारिक पिता अपने पुत्र से प्रेम करता है और, इसलिए, वह अपने पुत्र के निवेदनों का उत्तर देने की तीव्र इच्छा रखता है।

१) हमारा स्वर्गीय पिता हमसे कितना अधिक प्रेम रखता है?

२) हमें अच्छी वस्तएं देने के लिए हमारा स्वर्गीय पिता कितनी अधिक इच्छा रखता है?

३) हमारा स्वर्गीय पिता कितना अधिक कर सकता है?

४) हमारे निवेदनों का उत्तर देने के लिए उसके पास कितनी अधिक क्षमता है?

ख. इन प्रश्नों के उत्तर उस निश्चय का आधार हैं जो प्रार्थना में है। परमेश्वर हमारे लिए है। परमेश्वर समर्थ है। ये दो अहसास निश्चय को बढ़ावा देते हैं।

E. प्रसंग #५: आज्ञाकारिता।

१. विषय #१: आज्ञाकारिता।

क. आज्ञाकारिता की प्रकृति।

१) लूका ११:२७,२८ - हर मानव प्राणी परमेश्वर के प्रति आज्ञाकारी होने के लिए बराबर जिम्मेदार है। आज्ञाकारिता पक्षपाती नहीं है। यीशु इसे स्पष्ट करता है जब वह अपनी सांसारिक माता तथा परिवार का हवाला देता है।

२) लूका १७:१०- आज्ञा मानना वह है जो हमारी बाध्यता है और जिसे करने की हम से आशा की जाती है।

३) लूका ६:४६-४९ - परमेश्वर के पास आना और उसकी आवाज सुनना एक घर बनाने के अनुरूप है। उसकी आज्ञा मानना नींव डालने के अनुरूप है। सबक स्पष्ट है। बिना आज्ञाकारिता के कुछ भी स्थिर नहीं रहेगा (उसके पास आना और उसकी आवाज सुनना भी नहीं)।

४) लूका ५:५-७- कभी कभी आज्ञाकारिता तर्कसंगत नहीं लगती। पर हमें हर हाल में आज्ञाकारी होना है।

टिप्पणियाँ —

ख. आज्ञाकारिता का महत्व।

१) मत्ती ७:२१-२३ - परमेश्वर के राज्य में आज्ञाकारिता अतिआवश्यक है। राज्य में प्रवेश करना परमेश्वर को जानने पर निर्भर है (जो कि आज्ञाकारिता पर निर्भर है)।

२) यूह. १७:४ - परमेश्वर को महिमा देना उस कार्य को पूरा करना है जो उसने आपके लिए इस पृथ्वी पर करने के लिए रखा है (आज्ञाकारिता)।

३) लूका १०:४ - हम कह सकते हैं कि आज्ञाकारिता शिष्टाचार का अधिग्रहण करती है।

४) मर. १४:३६,३९ - कुछ शिक्षाएं कहती हैं कि जो कुछ आप चाहते हैं उसे प्रार्थना के द्वारा प्राप्त करना मजबूत विश्वास के बराबर है। बहरहाल, हमें सावधान (सन्तुलित) रहना चाहिए। इस तरह की सोच के अन्तर्गत यीशु कभी भी क्रूस पर नहीं गया होता। उसने असल में ''इस कटारे'' को हटाने के लिए प्रार्थना की। ध्यान दें कि उसने यह प्रार्थना इस संदर्भ में की कि ''परमेश्वर से सब कुछ संभव है'' (विश्वास का संदर्भ)। यदि परमेश्वर से सब कुछ संभव है तो यीशु ने अपने विश्वास को क्यों यह विश्वास करने के लिए प्रयोग नहीं किया कि ''यह कटोरा'' उस पर से हटा लिया जाएगा?

क) पहला, क्योंकि ''परमेश्वर से सब कुछ संभव है'' इसे अक्सर इस संदर्भ में रखा गया है परमेश्वर हमें कठिनाइयों **में से** होकर गुजरने में सक्षम बनाता है बजाए सीधे सीधे हमें **उनसे** छुड़ाने के (देखें फिलि- ४:१२,१३)।

ख) दूसरा, क्योंकि कभी कभी आज्ञाकारिता का विश्वास से पहले आना और उसका अधिग्रहण करना आवश्यक है। यीशु का विश्वास परमेश्वर की इच्छा पूरी होने पर निर्भर था। यह आज्ञाकारिता पर आधारित था न कि उसकी अपनी इच्छाओं पर या इस पर कि उसकी समझ में क्या अच्छा था। यह हमारे लिए एक बड़ा सबक है जबकि आज विश्वास की शिक्षा बहुत असन्तुलित और चरम बन गई है।

टिप्पणियाँ –

ग. आज्ञाकाररिता की मापः

१) लूका १९:१२-२६ – न्याय मात्र के बजाए गुण्वत्ता से अधिक सम्बद्ध होता है। यीशु हमारा न्याय इसके अनुसार नहीं करेगा कि अन्त में हमारे पास कितना है बल्कि इसके आधार पर कि जो हमें आरंभ (जब वह गया था) में दिया गया था उसका हमने क्या किया। कुछ हद तक आज्ञाकारिता भण्डारीपन के अनुसार मापी जाती है।

घ. आज्ञाकारिता परिणाम हैः

१) यूह. ७:१७ – प्रकाशन तथा समझ आज्ञाकारिता की ओर ले जा सकती है।

२) मत्ती २१:३० – पछतावा आज्ञाकारिता की ओर अग्रसर करता है।

३) यूह. ८:२९ – परमेश्वर के साथ सहभागिता आज्ञाकारिता की ओर ले जाती है।

४) यूह. १४:१५,२१ – परमेश्वर के लिए प्रेम आज्ञाकारिता की ओर ले जाता है।

ङ. आज्ञाकारिता के परिणाम।

१) यूह. ९:३१ – आज्ञाकारिता का परिणाम यह होता है कि परमेश्वर हमारी सुनता है जब हम प्रार्थना करते हैं।

२) यूह. १४:२१ – आज्ञाकारिता हमें और अधिक प्रकाशन की ओर ले जाती है।

३) मत्ती १२:५० और मर. ३:३५ – आज्ञाकारिता का परिणाम परमेश्वर के परिवार में आना होता है।

४) यूह. ८:२९ – आज्ञाकारिता परमेश्वर के साथ और अधिक सहभागिता की ओर ले जाती है।

५) मत्ती ७:२४ - आज्ञाकारिता बुद्धि की ओर ले जाती है।

६) यूह. ४:३४ – भोजन ऊर्जा और संतुष्टि का प्रतीक हो सकता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि आज्ञाकारिता का परिणाम जीवन में ऊर्जा और संतुष्टि होता है।

७) यूह. १५:७-११ – आज्ञाकारिता आनन्द की ओर ले जाती है।

८) यूह. १७:४ – आज्ञाकारिता का परिणाम परमेश्वर की महिमा होता है।

टिप्पणियाँ –

च. विश्वास और आज्ञाकारिता।

१) यूह. ११:३९,४० – विश्वास सिर्फ मान लेना नहीं है। यह परमेश्वर के वचन पर आधारित है। यह समझ हमें विश्वास की हमारी समझ में सन्तुलित रखेगी।

२) मर. १४:३६,३९ – कुछ शिक्षाएं कहती हैं कि जो कुछ आप चाहते हैं उसे प्रार्थना के द्वारा प्राप्त करना मजबूत विश्वास के बराबर है। बहरहाल, हमें सावधान (सन्तुलित) रहना चाहिए। इस तरह की सोच के अन्तर्गत यीशु कभी भी क्रूस पर नहीं गया होता। उसने असल में ''इस कटारे'' को हटाने के लिए प्रार्थना की। ध्यान दें कि उसने यह प्रार्थना इस संदर्भ में की कि ''परमेश्वर से सब कुछ संभव है'' (विश्वास का संदर्भ)। यदि परमेश्वर से सब कुछ संभव है तो यीशु ने अपने विश्वास को क्यों यह विश्वास करने के लिए प्रयोग नहीं किया कि ''यह कटोरा'' उस पर से हटा लिया जाएगा?

क) पहला, क्योंकि ''परमेश्वर से सब कुछ संभव है'' इसे अक्सर इस संदर्भ में रखा गया है परमेश्वर हमें कठिनाइयों **में से** होकर गुजरने में सक्षम बनाता है बजाए सीधे सीधे हमें **उनसे** छुड़ाने के (देखें फिलि- ४:१२, १३)।

ख) दूसरा, क्योंकि कभी कभी आज्ञाकारिता का विश्वास से पहले आना और उसका अधिग्रहण करना आवश्यक है। यीशु का विश्वास परमेश्वर की इच्छा पूरी होने पर निर्भर था। यह आज्ञाकारिता पर आधारित था न कि उसकी अपनी इच्छाओं पर या इस पर कि उसकी समझ में क्या अच्छा था। यह हमारे लिए एक बड़ा सबक है जबकि आज विश्वास की शिक्षा बहुत असन्तुलित और चरम बन गई है।

छ. आज्ञाकारिता की कमी।

१) मत्ती ७:२६, २७ – परमेश्वर के वचन के प्रति आज्ञाकारिता की कमी नींव को कमजोर करती है, और कमज़ोर मसीहियों को पैदा कर सकती है। यह एक आत्मिक नियम है। आज्ञाकारिता परमेश्वर की ओर ले जाती है। पाप दूसरी चीजों की ओर ले जाता है।

२) लूका ६:४६-४९ – परमेश्वर के पास आना और उसकी आवाज सुनना एक घर बनाने के अनुरूप है। उसकी आज्ञा मानना नींव डालने के अनुरूप है। सबक स्पष्ट है। बिना आज्ञाकारिता के कुछ भी स्थिर नहीं रहेगा (उसके पास आना और उसकी आवाज सुनना भी नहीं)।

टिप्पणियाँ –

३) मत्ती १५:८, ९ और मर. ७:७ – बिना आज्ञाकारिता के आराधना अर्थहीन है। यह वैध नहीं है। यह बेकार और व्यर्थ है।

४) यूह. ३:३६ – आज्ञाकारिता की कमी परमेश्वर के प्रकोप की ओर ले जाती है।

२. इस प्रसंग में केवल एक ही विषय है।

III. मसीही।

क. प्रसंग #१: मसीही जीवन।

१. विषय #१: सादगी।

क. लूका १०:३८-४२ – हम अक्सर उन चीजों के कारण विचलित होते हैं जो हम परमेश्वर के लिए करते हैं। हम अपने जीवनों को जटिल बनाने का प्रयास करते हैं। फिर भी, यीशु हमें बुलाता है कि हम उसके साथ बैठें और अपने जीवनों की सरलता का अहसास करें।

ख. लूका १२:२६,३१ – हम अपने जीवनों को उससे और अधिक जटिल बनाने की कोशिश करते हैं जितने कि वे होने चाहिए। हम उन चीजों की चिन्ता करते हैं जिन्हें हम नियंत्रित नहीं कर सकते। चिन्ता करने के बजाए हमें यह अहसास करना चाहिए कि परमेश्वर संप्रभु है। यह हमें उसे करने के लिए स्वतंत्र करेगा जिसे हम नियंत्रित कर सकते हैं (जिसके लिए हम जिम्मेदार हैं)। वह है, परमेश्वर के राज्य को खोजना। यह वास्तव में अत्यधिक सरल (जटिल नहीं) है।

ग. लूका १२:३१-३३ – राज्य की शिक्षा यहाँ पृथ्वी पर धन-संपत्ति होने के विपरीत है। यह हमारी जरूरतें पूरी होने से सम्बन्धित है (पद ३१), परन्तु बहुत अधिक संपत्ति रखने और इकट्ठा करने के विरोध में है (देखें लूका १२:१६-२१)। राज्य की शिक्षा जमा करने और रखने से के बजाए देने से अधिक सम्बन्धित है। इसलिए, हम कह सकते हैं कि राज्य की शिक्षा ''सादा जीवन शैली'' को बढ़ावा देती है।

घ. मत्ती ६:३२ – मत्ती ६ के अनुसार **जरूरतों** का विचार बहुत बुनियादी है। जरूरतों में जीवन की बुनियादी आवश्यकताएं जैसे भोजन तथा आवरण (आश्रय, वस्त्र) शामिल है। हमें एक सादा जीवनचर्या में सन्तोष होना चाहिए।

टिप्पणियाँ —

२. विषय #२: संगठन और अनुशासन।

क. लूका ९:१४ – आत्मा की अगुवाई तथा संगठन का सह अस्तित्व है।

ख. मर. १:३५ – यीशु के कुछ विशेष रिवाज, आदतें और अनुशासन थे। यहाँ हम उसे भोर को प्रार्थना करने के अनुशासन का पालन करते हुए देखते हैं (मत्ती १४:२३; मर. ६:४६; लूका ६:१२; ९:२८; २२:३९)।

३. विषय #३: आराधना और प्रशंसा।

क. लूका १९:४० – परमेश्वर की प्रशंसा हमेशा करनी चाहिए। यह सृष्टि का नियम है। अगर लोग उसकी प्रशंसा नहीं करेंगे तो पत्थर प्रशंसा में चिल्ला उठेंगे। यह नियम मसीही के जीवन में आराधना और प्रशंसा के महत्व को दिखाता है।

ख. लूका २४:३०,३५ – यीशु रोटी तोड़ने में दिखाई देता है। रोटी तोड़ना आराधना ('यूकारिस्ट' एक पूजन पद्धति सम्बन्धी शब्द है जो प्रभु भोज से सम्बन्धित है) का एक कार्य है। इसका अनुवाद ''धन्यवाद देने'' के अर्थ में किया जाता है। इस तरह सिद्धान्त यह है कि जब मसीही आराधना करते हैं तो वे यीशु को वास्तविक रूप में अनुभव करते हैं।

ग. मत्ती १५:८-९ – आज्ञाकारिता आराधना की ज़रूरत है।

घ. मर. ७:७ – बिना आज्ञाकारिता आराधना अर्थहीन है।

४. विषय ४: शब्द और बोलना।

ङ. मत्ती २१:२८-३२ – कार्य शब्दों से अधिक ऊँचा बोलते हैं।

च. लूका ६:४५ – जो शब्द हम बोलते हैं वे यह प्रगट करते हैं कि हमारे हृदयों (चरित्र, इच्छा, भावनाएं इत्यादि) में क्या है। हम क्या बोलते हैं और हम क्या हैं ये दोनों बातें आपस में सम्बन्धित हैं।

छ. मत्ती १५:११,१८ – अशुद्धता उसका परिणाम है जो कहा गया, सोचा गया, और किया गया (वास्तविकता)। क्या खाया गया (बाहरी) यह उसका परिणाम नहीं है। इसका सम्बन्ध उससे है जो हृदय से बाहर आता है।

ज. मत्ती १२:३६ – मनुष्यों का न्याय उन शब्दों के अनुसार होगा जिन्हें वे बोलते हैं।

टिप्पणियाँ

ख. प्रसंग #२: विश्वासियों के विशेषाधिकार।

१. विषय #१: विश्वासी का महत्व।

क. लूका ११:११-१३ – एक सांसारिक पिता के लिए उसका पुत्र बहुत महत्वपूर्ण है। हम अपने स्वर्गीय पिता के लिए कितने अधिक महत्वपूर्ण होंगे?

ख. मत्ती १८:१२-१४ – यीशु सौ में से एक भेड़ को खोजेगा जो भटकी है। प्रत्येक व्यक्तिगत विश्वासी उसके लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

ग. मत्ती ११:११ – यीशु के अनुसार, यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला पुराने नियम के चरित्र (मूसा एलियाह, दाऊद, इत्यादि) से अधिक महान था। फिर भी छुटकारे के इतिहास में छोटे से छोटा मसीही यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले से अधिक महत्वपूर्ण है। एक मसीही के रूप में छुटकारे के इतिहास में आपका महत्व यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले से अधिक है!

घ. यूह. १७:२२,२३- हमारा महत्व इस तथ्य में दिखाई देता है कि यीशु अपनी महिमा हमारे साथ बाँटेगा (पद २२)। यह सत्य है क्योंकि यीशु हम में है (पद २३)।

२. विषय #२: विश्वासियों का अधिकार।

क. यूह. ९:११ – उसको छोड़ और कोई अधिकार नहीं जो परमेश्वर के द्वारा स्थापित किया गया है।

ख. मत्ती २८:१८ – यीशु के स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार है।

ग. मर. १०:४२-४४ – संसार में पद के कारण अधिकार लिया जाता और उसे प्रयोग में लाया जाता है। परमेश्वर के राज्य में काम (सेवा) के कारण अधिकार अर्जित और प्राप्त किया जाता है।

घ. लूका ४:३६ – दुष्टात्माओं को निकालने के लिए अधिकार और सामर्थ ज़रूरी है।

टिप्पणियाँ —

ङ. लूका ७:८ – हमारा अधिकार यीशु से आता है। हम राजदूत हैं जो राजा का प्रतिनिधित्व करते हैं। हमारा अधिकार राजा के अधिकार पर आधारित है। एक प्रकार से यीशु पिता का राजदूत था। उसका अधिकार पिता से आया था।

च. यूह. २०:२३ – कलीसिया के पास पापों की क्षमा की घोषणा करने का अधिकार है। मसीह जो क्षमा का स्रोत है, अपनी देह के द्वारा क्षमा की घोषणा करता है।

छ. लूका १२:४८ – आपको जितना अधिक अधिकार दिया जाएगा आपकी ज़िम्मेदारी उतनी ही अधिक होगी।

३. विषय #३: विश्वासी की स्वतंत्रता।

क. मर. ११:२९-३२ – मनुष्यों को प्रसन्न करने की इच्छा एक बड़ा ठोकर का कारण है।

ख. यूह. ८:३१-३४ – वचन का पालन करने का परिणाम सत्य को जानना होता है और सत्य को जानने का परिणाम पाप से स्वतंत्रता होता है।

ग. मत्ती ११:३० – एक जुआ (जो उठाया जाता है) जो दया (निस्वार्थ, प्रेम) से बना है इसका परिणाम स्वतंत्रता (हल्का बोझ) होता है।

४. विषय #४: विश्वासी की सुरक्षा और ऊर्जा।

क. यूह. ४:३४ – भोजन ऊर्जा और संतुष्टि का प्रतीक हो सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जीवन में आज्ञाकारिता का परिणाम ऊर्जा तथा संतुष्टि होता है।

ख. यूह १३:१,३ – उस सुरक्षा के कारण जो हमें परमेश्वर में है हमें दूसरों की सेवा करने और उनसे प्रेम करने में समर्थ होना चाहिए। हम **जानते हैं** कि हम कहाँ जा रहे हैं, हमारे पास परमेश्वर में क्या है, और यह कि हमारा उससे सम्बन्ध है। इस सुरक्षा के कारण हमें सेवा करने का प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

टिप्पणियाँ –

५. विषय ५: विश्वासी का आनन्द और उसका आनन्दित होना।

क. लूका १०:२० – हमें यह याद रखना चाहिए कि हमारा आनन्द परमेश्वर चिन्ह और चमत्कार करनेवाली अलौकिक सामर्थ पर आधारित नहीं है, परन्तु यह परमेश्वर की उद्धार करनेवली सामर्थ पर आधारित है।

ख. यूह. १५:७-११ – आनन्द परमेश्वर के प्रति हमारी आज्ञाकारिता तथा उसके साथ हमारे सम्बन्ध से जुड़ा है।

ग. मत्ती ५:१२ – जब यीशु पर विश्वास रखने के कारण हम पर झूठे आरोप लगाए जाते हैं, हमें अपना बचाव करने की ज़रूरत नहीं है; हमें आन्दित होना चाहिए। यह एक विशेषाधिकार है।

६. विषय #६: विश्वासी के सम्बन्ध में परमेश्वर की महिमा।

क. यूह. ३:३० – मसीह के बढ़ने के लिए हमें घटना आवश्यक है। इसमें उसकी महिमा होती है।

ख. यूह. ७:१८ – हमें अपनी महिमा नहीं खोजनी चाहिए। हमें परमेश्वर की महिमा खोजनी चाहिए।

ग. यूह. १७:४ - परमेश्वर की महिमा करने के लिए हमें वह कार्य पूरा करना होगा जो परमेश्वर ने हमें यहाँ पृथ्वी पर करने के लिए दिया है।

घ. यूह. १४:१३ – परमेश्वर की महिमा तब होती है जब यीशु के नाम में उसकी इच्छा मालूम करते हैं।

ङ. यूह. ९:३ और ११:४ – परमेश्वर बीमारी को पापरहित रूप में अपनी महिमा के लिए प्रयोग कर सकता है।

च. यूहन्ना १७:५, २२, २३ – जगत की उत्पत्ति से पहले यीशु की महिमा परमेश्वर के साथ थी। विश्वासी के रूप में अब हम यीशु की महिमा में भागीदार हैं, क्योंकि वह हम में है।

टिप्पणियाँ —

ग. प्रसंग #३: विश्वासी के उत्तरदायित्व।

१. विषय #१: प्रतिनिधित्व।

क. लूका ७:८ – हमारा अधिकार यीशु से आता है। हम राजदूत हैं जो राजा का प्रतिनिधित्व करते हैं। हमारा अधिकार राजा के अधिकार पर आधारित है। यीशु एक प्रकार से पिता का राजदूत था। उसका अधिकार पिता से आया था। हमारे उत्तरदायित्व इस तथ्य पर आधारित हैं कि हम यीशु के प्रतिनिधि हैं।

ख. लूका १०:१६ – एक मसीही के प्रचार को सुनना या उसका इन्कार करना मसीह के प्रचार को सुनने या इन्कार करने के समान है। हम यीशु के प्रतिनिधि हैं।

ग. मर. ९:३७ - यहाँ हम फिर से प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को देखते हैं। एक विश्वासी को ग्रहण करना, स्वीकार करना और उसका स्वागत करना यीशु को ग्रहण करने, स्वीकार करने और स्वागत करने के बराबर है।

२. विषय #२: भण्डारीपन।

क. लूका १२:४२ – तैयार और सतर्क रहना उन चीजों का अच्छा भण्डारी होने से जुड़ा है जिन्हें परमेश्वर ने हमें करने के लिए दिया है।

ख. लूका १९:१२-२६ – यीशु हमारा न्याय इसके अनुसार नहीं करेगा कि अन्त में हमारे पास कितना है, बल्कि इसके अनुसार कि हमने उसके साथ क्या किया जो उसने हमें आरंभ में दिया था (जब वह गया था)। कुछ हद तक आज्ञाकारिता भण्डारीपन के अनुसार मापी जाती है।

ग. लूका ६:२४-२६ – एक अच्छा भण्डारी होने का एक तत्व यह है कि हम विलासिता का जीवन जीने के द्वारा चीजों को **बरबाद** नहीं करते। इस वाक्य अंश का अर्थ यह मालूम होता है कि मसीही जीवन का परिणाम संसार में आराम और समृद्धि नहीं होगा।

३. विषय #३: एक दास के उत्तरदायित्व।

क. लूका १७:६-१० – एक विश्वासी के उत्तरदायित्व एक दास के उत्तरदायित्वों के समान हैं। ये उत्तरदायित्व बाध्यताएं हैं। उत्तदायित्वों को पूरा करना किसी अधिकार को अर्जित नहीं करता।

ख. मत्ती २०:२५-२८ – पहला होना, या ऊँचा पद प्राप्त करने के लिए दास और सेवक होना आवश्यक है।

टिप्पणियाँ –

घ. प्रसंग #४: कष्ट।

१. विषय #१: कष्ट और सताव।

क. कष्ट और सताव के सम्बन्ध में परमेश्वर की संप्रभुता।

१) यूह. ७:३० – हम परमेश्वर की इच्छा के बाहर सताए नहीं जा सकते। यदि यह परमेश्वर की इच्छा है तो यह हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ है।

२) यूह. ८:२० – हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। परमेश्वर के नियंत्रण में सब कुछ है।

ख. मसीहियों को कौन सताता है?

१) संसार।

क) यूह. १५:१९ – हम इस संसार के नहीं हैं। यीशु ने हमें संसार में से चुन लिया है। इसलिए संसार हम से घृणा करता है।

ख) मत्ती ५:१० – जो परमेश्वर शासन के अधीन रहते हैं वे धार्मिकता का अभ्यास करते हैं। क्योंकि संसार परमेश्वर के शासन को नहीं देख सकता इसलिए वे धर्मियों को सताते हैं।

ग) लूका २३:१२ – सांसारिक समूह जो सामान्यतया शत्रु हैं वे यीशु और उसके अनुयायियों का सामूहिक विरोध करने में एकता पाते हैं।

२) रिश्तेदार।

क) मत्ती १०:२१, ३४-३६ – सुसमाचार पारिवारिक सदस्यों तक में विभाजन करा देता है क्योंकि आत्मिक बन्धन स्वाभाविक बन्धनों से अधिक मजबूत हैं। इसलिए, हो सकता है आपके परिवार के सदस्य यीशु के कारण आपसे नफरत करें।

ख) लूका २१:१६,१७ - यीशु के नाम के कारण अक्सर मसीहियों से हर कोई नफरत करता है। यह संभव है कि आपके माता-पिता और रिश्तेदार आपके साथ विश्वासघात करें और आपको मार डालें।

टिप्पणियाँ —

३) बाहरी रूप से धार्मिक लोग।

क) मर. ३:२१,२२ – यीशु के समय के धार्मिक लोग (उसके परिवार के लोग भी) सोचते थे कि वह पागल है। हमें भी इससे अलग की आशा नहीं करनी चाहिए (देखें यूह १५:२०)।

ख) यूह. १६:२ - जो लोग मसीहियों को मार डालेंगे वे सोचेंगे कि वे परमेश्वर की सेवा कर रहे हैं। यानि वे धार्मिक कारणों से हत्या करेंगे। निश्चित रूप से यीशु स्वंय भी इसी तरह मार डाला गया था।

ग. मसीहियों को क्यों सताया जाता है?

१) यूह. १५:२० – हमें इससे आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए कि हमें सताया जाता है क्योंकि हम जानते हैं कि मसीह हम में रहता है। मसीहियों का सताव स्वंय मसीह के सताव का जारी रहना है। इस प्रकार संसार हम में यीशु से घृणा करता है।

२) यूह. १६:२ - मसीहियों को इसलिए सताया जाता है क्योंकि संसार आत्मिक रूप से अन्धा है।

३) मत्ती १०:२२ - मसीहियों को यीशु के नाम के कारण सताया जाता है।

४) मर. १०:३० – मसीही बलिदान सताव से सम्बन्धित है।

५) मर. ३:२१,२२ – सांसारिक लोग मसीहियों को नहीं समझ सकते। मसीही उन्हें पागल दिखाई देते हैं। यह सताव की ओर अग्रसर करता है।

६) मत्ती १०:२५ – मसीहियों को इसलिए सताया जाता है क्योंकि वे यीशु के घराने के हैं।

घ. सताव से बचना।

१) मत्ती १६:२३ – शैतान के बड़े हथियारों में से एक हमें मनुष्यों के हितों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए प्रोत्साहित करना है। यह हमें कष्ट और कठिनाईयों का इन्कार करने पर मजबूर कर सकता है जिसके कारण हम मसीह से दूर हो सकते हैं। आरामदायक जीवन का प्रस्ताव हमेशा से शैतान का सबसे अधिक प्रयोग किया जाने वाला हथियार है।

२) यूह. ७:१ – सताव से बचना बुद्धिमानी है (यूह. ८:५९ भी देखें)।

टिप्पणियाँ —

ङ. सताव की आशीषें।

१) मत्ती १०:१९,२० और मर. १३:११ – जब आप मसीह के कारण सताए जाते हैं तो वह आपकी ओर से बोलेगा। यदि आप उसे पहचानेंगे तो वह आपको पहचानेगा और आपकी सहायता करेगा।

२) लूका २१:१०-१५ - जब आपको मसीह की खातिर अधिकारियों के सामने ले जाया जाए तो अपना बचाव करने में समय न लगाएं। समय से पहले इस अवसर को मसीह के बारे में गवाही देने के लिए प्रयोग करने का फैसला करें और वह आपको आपके विरोधियों को पराजित करने की बुद्धि देगा।

३) लूका ६:२०-२३ - जो लोग यीशु के कारण सताए जाते हैं उनके लिए स्वर्ग में बड़ा प्रतिफल है।

४) मर. १३:६-१३ – अन्त के समय में मसीहियों को सताया जाएगा और उनसे घृणा की जाएगी। मजबूती से खड़े रहना उद्धार लेकर आएगा।

२. विषय #२: दृढ़ता और सहनशीलता।

क. लूका २१:१९ - मसीहियों को सताव में दृढ़ रहना तथा उसे सहना आवश्यक है।

ख. मर. १३:१३ - जो अन्त तक धीरज रखेंगे उन्हीं का उद्धार होगा।

ङ. प्रसंग #५: प्रतिफल।

१. विषय #१: प्रतिफल।

क. प्रतिफल कहाँ से मिलते हैं:

१) मत्ती ६:१-८ – आप किसके लिए काम करते हैं? उन्हीं से आपको अपना प्रतिफल मिलेगा।

२) लूका १४:१२-१४ – यीशु हमें ऐसे तरीके खोजने के लिए प्रोत्साहित करता है जिनसे हम स्वर्ग में प्रतिफल प्राप्त कर सकें। ऐसे कार्य करें जिनसे आपके ऊपर ध्यान आकर्षित न करें। यानि, ऐसे कार्य करें जिनका प्रतिफल यहाँ पृथ्वी पर न मिले।

टिप्पणियाँ –

ख. प्रतिफल के उदाहरण

१) मत्ती १९:२९ और लूका १८:२९,३०- सबसे पहले, हमें यह महसूस करना ज़रूरी है कि सबसे बड़ा प्रतिफल अनन्त जीवन है।

२) मर. १०:३० – यह परिच्छेद उसका १०० गुना प्राप्त करने के बारे में बात करता है जो आपने छोड़ दिया (सतावों के साथ)।

ग. यह कैसे निर्धारित किया जाता है कि प्रतिफल किसको मिलेगा?

१) मर. १०:४० – सबसे पहले हमें याद रखना चाहिए कि स्वर्ग में का हर प्रतिफल परमेश्वर के द्वारा पहले से तैयार किया गया है।

२) मत्ती २०:२१,२२ - आनेवाले जीवन में मिलने वाला प्रतिफल सीधे सीधे इस जीवन में किए गए कार्यों से सम्बन्धित है। अनन्तकाल में हमारे स्थान उस पर निर्भर करते हैं जो हम इस पृथ्वी पर करते हैं। हम कह सकते हैं कि जितनी अधिक मृत्यु (स्वंय के प्रति) आप यहाँ अनुभव करेंगे, उतना ही अधिक जीवन आप वहाँ अनुभव करेंगे।

३) मत्ती १९:२१ - अपने आप का इन्कार करना स्वर्ग में धन की ओर ले जाता है।

४) मत्ती १९:२९; मर. १०:३० - प्रतिफल उनके लिए हैं जो मसीह के लिए त्याग करते हैं।

५) लूका ६:२२,२३ – मसीह के नाम के लिए लज्जित होने का परिणाम स्वर्ग में बड़ा प्रतिफल हो सकता है।

६) मर. १०:२१ और मत्ती ६:४०,२० – पृथ्वी पर देने का परिणाम स्वर्ग में प्रतिफल होता है।

७) लूका १८:२२ – कंगालों को देने का परिणाम स्वर्ग में प्रतिफल होता है।

८) यूह. ४:३६ – सुसमाचार प्रचार का परिणाम अनन्त मजदूरी (प्रतिफल) होता है।

९) मत्ती १०:४१,४२ – प्रतिफल उनसे सम्बन्धित हैं जिनका हम स्वागत करते, उन्हें ग्रहण करते, स्वीकार करते, और उनकी सहायता करते हैं।

१०) मर. ९:३९,४१ - जो कोई यीशु के नाम में भलाई करता है वह प्रतिफल प्राप्त करेगा।

टिप्पणियाँ –

११) मर. १०:२८-३१ – पिछलों के पहले होने का विचार सब कुछ छोड़कर यीशु (बलिदान) की आज्ञा मानने के संदर्भ में स्थापित किया गया है। संसार में सब कुछ छोड़ने का परिणाम संसार में अन्त में होना है। बहरहाल, आप परमेश्वर के राज्य में पहले होंगे। जो हर वस्तु को थामते हैं वे इस जीवन में आगे हो सकते हैं, परन्तु आने वाले युग में अन्तिम होंगे। स्वर्ग में प्रतिफल यहाँ पृथ्वी पर अपने आप का इन्कार करने से निकट रूप से सम्बन्धित है।

२. विषय #२: आशीषें।

क. मत्ती ५:४५ - परमेश्वर की आशीषें सब मनुष्यों को प्रदान की जाती हैं।

ख. लूका ६:२०,२१ - आशीषें उन्हें मिलती हैं जो आवश्यकता में होते हैं क्योंकि यीशु आवश्यकता पूरी करता है।

३. विषय #३: दान।

क. मत्ती २१:४३ – जो लोग उचित रूप से प्रभु का प्रतिनिधित्व नहीं करते, प्रभु उनसे अपनी वस्तुएं वापस ले लेगा। वे दूसरों को दे दी जाएंगी। इस तरीके से अभी हमारा न्याय किया जा सकता है। हमें दिए गए दान वापस लिए जा सकते हैं।

ख. लूका १९:२०-२६ - कुछ लोग असफल होने से डरते हैं (जो कि एक तरह का घमंड है)। इसलिए वे कभी उसे प्रयोग नहीं करते जो यीशु ने उन्हें दिया है। वे नुकसान उठाएंगे।

ग. लूका १९:१२-२६ – यीशु हमारा न्याय उसके आधार पर करेगा जो उसने आरंभ में हमें दिया था (जब वह गया था)। हमने उन दानों का क्या किया जो उसने हमें दिए थे?

घ. लूका ११:११-१३ – इस घटना में हम देखते हैं कि एक पुत्र है जो अपने पिता से एक दान मांगता है। उपमा के अनुसार हम कह सकते हैं कि पुत्र (एक व्यक्ति जो पहले से मसीही है) पिता (परमेश्वर) से एक दान (पवित्र आत्मा) मांगता है। यह ''दूसरे अनुभव'' के विचार की ओर संकेत करता है जिसमें मसीही पवित्र आत्मा का बपतिस्मा दान के रूप में प्राप्त करते हैं।

ङ. अविवाहित रहने की क्षमता परमेश्वर का दान है। हमें इसे किसी ऐसे व्यक्ति पर नहीं थोपना चाहिए जिसके पास यह दान नहीं है।

टिप्पणियाँ –

४. विषय #४: आराम।

क. मत्ती ५:४ – हमें इसलिए नहीं मिलता **क्योंकि** हम माँगते नहीं। बहुतों को आराम इसलिए नहीं मिलता क्योंकि वे क्योंकि उनका हृदय शोक करने और विश्राम मांगने के लिए कठोर है। सच्चा शोक सच्चे विश्राम की ओर अग्रसर करता है।

ख. लूका १२:२ - पाखण्डी अभी दूसरों को धोखा दे सकते हैं परन्तु अन्त में उनकी मूर्खता उजागर हो जाएगी। हर वस्तु वास्तव में क्या है अन्त में यह प्रगट हो जाएगा। इसलिए परमेश्वर का ''अन्तिम न्याय'' उन लोगों के लिए विश्राम लेकर आएगा जो हबक्कूक के जैसा महसूस करते हैं (देखें हब. १:१-४,१२-१४)।

ग. लूका ६:२४-२६ – एक अच्छा भण्डारी होने का एक तत्व यह है कि हम विलासिता का जीवन जीने के द्वारा चीजों को **बरबाद** नहीं करते। इस वाक्य अंश का अर्थ यह मालूम होता है कि मसीही जीवन का परिणाम संसार में आराम और समृद्धि नहीं होगा।

घ. मर. ८:३१-३३ – शैतान हमें परमेश्वर के मार्ग (जो कि क्रूस है) से दूर रखने के लिए संसार के आराम और सफलता के द्वारा हमारी परीक्षा करेगा। व्यर्थता और आरामदायक जीवन की परीक्षा एक सामान्य ठोकर का कारण है।

IV. परमेश्वर के साथ सम्बन्ध।

क. प्रसंग #१: परमेश्वर को खोजना।

१. विषय #१: परमेश्वर को खोजना।

क. परमेश्वर को खोजने का महत्व।

१) यूह. १७:३ – अनन्त जीवन परमेश्वर को जानना है।

२) यूह. ६:२९ – यीशु के अनुसार वाक्यांश ''अच्छे कार्य'' उसमें विश्वास करने और भरोसा रखने रूप में परिभाषित किए गए हैं।

३) मर. ३:१४ - यीशु के साथ होना यीशु का काम करने से पहले आता है।

४) लूका १०:३८-४२ - हम अक्सर उन चीजों के द्वारा विचलित होते हैं जो हम परमेश्वर के लिए करते हैं। हम अपने जीवनों को जटिल बनाने की कोशिश करते हैं। तो भी, यीशु हमें अपने साथ बैठने और अपने जीवन की सादगी का अहसास करने के लिए बुलाता है।

टिप्पणियाँ –

५) यूह. ५:१९ – यीशु की सेवकाई की सफलता की कुंजी यह थी कि वह देख सकता था कि परमेश्वर क्या कर रहा था (यानि वह परमेश्वर को खोजने के महत्व को समझता था)।

६) मत्ती २२:८ - योग्यता परमेश्वर की बुलाहट (उसके पास आना या न आना) के प्रति हमारे प्रतिउत्तर पर अधारित है।

ख. परमेश्वर को खोजना हमारी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए।

१) लूका १२:२६,३१ - हमें परमेश्वर के राज्य को खोजने के द्वारा परमेश्वर की संप्रभुता के प्रति प्रतिउत्तर देना चाहिए। हम उन बातों की चिन्ता करते हैं जिन्हें हम नियंत्रित नहीं कर सकते। चिन्ता करने के बजाय हमें अहसास करना चाहिए कि परमेश्वर संप्रभु है। यह हमें उसे करने के लिए स्वतंत्र करेगा जिसे हम नियंत्रित कर सकते हैं (जिसके लिए हम उत्तरदाई हैं)। यह कि हमें पहली प्राथमिकता के रूप में परमेश्वर के राज्य को खोजना है।

२) मत्ती ६:३३ - यह प्राथमिकता के विचार से भी आगे है। ''पहली'' शब्द को ''एकमात्र'' के रूप में अनुवाद करना ज्यादा बेहतर होगा। परमेश्वर को खोजना हमारी एकमात्र चिन्ता होनी चाहिए।

३) मत्ती ६:२१ – स्वर्ग में निवेष करें! स्वर्गीय वस्तुओं में समय लगाएं, अपना ध्यान केन्द्रित करें और आपका हृदय स्वर्ग में बना रहेगा। जो आपके लिए महत्वपूर्ण है उसे आप जहाँ रखेंगे आपका हृदय वहीं होगा।

ग. परमेश्वर को खोजने की प्रक्रिया।

१) लूका १५:४-६ - हम हैं जो खोए हुए हैं। परमेश्वर नहीं खोया है। हम परमेश्वर को नहीं ''ढूँढ निकालते।'' परमेश्वर हमें ''ढूँढ निकालता'' है। परमेश्वर को खोजने की प्रक्रिया परमेश्वर से आरंभ होती है (यूह. १५:१६ भी देखें)।

२) लूका ३:१७ – ऐसा लगता है कि जो बपतिस्मा यीशु देता है उसमें उस व्यक्ति को यीशु (पवित्र आत्मा) के पास आने, साथ ही न्याय, अनुशासित या परिष्कृत (आग) करने के लिए सशक्त बनाया जाता है।

३) मत्ती ४:२४,२५ - प्रक्रिया वहाँ से आरम्भ होती है जहाँ आप अभी (परमेश्वर हमें वहीं स्वीकार करता है जहाँ हम हैं) हैं। परमेश्वर को जानने की इच्छा में बढ़ोत्तरी तब आरंभ होती है जब आप अपनी वर्तमान इच्छा पर कार्य करते हैं। यदि आप अपनी वर्तमान इच्छा (भले यह कितनी ही छोटी क्यों न हो) पर कार्य नहीं करते, तो आप उसमें से भी कुछ खो देते हैं जो आपके पास था।

टिप्पणियाँ —

४) यूह. ८:२९ - वह मात्र जिसमें आप परमेश्वर को खोजते हैं आपकी आज्ञाकारिता के साथ सीधे रूप में जुड़ी होगी।

५) लूका ६:४६-४९ - परमेश्वर के पास आना और उसकी आवाज सुनना एक घर बनाने के समान है। उसकी आज्ञा मानना नींव डालने के समान है। सबक स्पष्ट है। बिना आज्ञाकारिता के कुछ भी स्थाई नहीं होगा।

घ. परमेश्वर को खोजने का तरीका।

१) मर. १५:३८ और लूका २३:४५ – जब यीशु मरा तो पुराने नियम का स्थान नए नियम ने ले लिया। मनुष्य अब यीशु के द्वारा परमेश्वर की उपस्थिति में आ सकता था। यीशु मन्दिर का पर्दा बन गया। इसलिए यह दो भागों में फट गया जब यीशु क्रूस पर मरा। हम नऐ पर्दे यीशु के द्वारा परमेश्वर को खोजते हैं।

२) मत्ती १८:२० – हम दूसरे मसीहियों के साथ यीशु को खोज सकते हैं। वह उन दो या तीन लोगों के बीच में होता है जो उसके नाम पर इकट्ठे होते हैं।

३) मत्ती ६:१,८ – परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध का दिखावा करना पाखण्ड का सूचक है। प्रार्थना में अर्थहीन दुहराव भी पाखण्ड का चिन्ह है। ये वे तरीके हैं जिनसे परमेश्वर को **नहीं** खोजना चाहिए।

ङ. परमेश्वर को खोजने के परिणाम।

१) मत्ती १८:२० - यीशु उन लोगों के बीच में होगा जो उसे खोजते हैं।

२) मर. ४:१०, ११ – परमेश्वर को खोजने (उसके ''पीछे होने'') का परिणाम भेदों को समझना (प्रकाशन) होता है।

३) यूह. २०:१६ - जो व्यक्गित सम्बन्ध हमारा यीशु के साथ है वही हमें प्रकाशन प्राप्त करने की ओर ले जाता है। यीशु हमें नाम लेकर बुलाता है और अपने सम्बन्ध के द्वारा हमारे हृदयों को छूता है। इसका परिणाम प्रकाशन होता है।

४) मत्ती ६:२१ – स्वर्ग में निवेश करें! स्वर्गीय चीजों में अपना समय लगाएं और ध्यान केन्द्रित करें तो आपका हृदय स्वर्ग में बना रहेगा। जो आपके लिए महत्वपूर्ण है उसे आप जहाँ रखेंगे वहीं आपका हृदय होगा।

५) यूह. १५:७-११ – आनन्द परमेश्वर को खोजने (उसके साथ सम्बन्ध रखने) से सम्बन्धित है।

टिप्पणियाँ —

६) मत्ती ५:६ - परिपूर्णता और संतुष्टि परमेश्वर को खोजने को परिणाम है।

७) मत्ती ६:३३ - परमेश्वर को खोजने का परिणाम हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति है।

८) यूहन्ना १५:७ - प्रार्थना का उत्तर परमेश्वर को खोजने से संबंधित है।

९) यूहन्ना १७:२१ - परमेश्वर को खोजने का परिणाम संसार को यह गवाही देना है कि यीशु ही परमेश्वर है। परमेश्वर को जानने का परिणाम यह है कि आप दूसरों को उसके बारे में बताएंगे।

च. परमेश्वर को खोजने का विरोध।

१) मत्ती २७:४६ – पाप के कारण यीशु ने परमेश्वर से अलगाव महसूस किया। जब हम पाप करते हैं हम अपने आप को परमेश्वर से अलग कर लेते हैं (रोमियों ६:२३।)। पाप परमेश्वर को खोजने का विरोधी है।

२) मत्ती २०:३१ - संसार यह नहीं सुनना चाहता कि लोग यीशु को पुकारें। यदि हम अपनी आँखे यीशु के बजाय मनुष्यों पर लगाते हैं तो यह ठोकर खाने का कारण हो सकता है। हमें लगातार उसे पुकारते रहना चाहिए इससे फर्क नहीं पड़ता कि संसार क्या कहता है।

ख. विषयवस्तु #२: प्रार्थना।

१. विषय #१: प्रार्थना।

क. प्रार्थना हैः

१) लूका ९:४१ - विश्वास की कमी या प्रार्थना की कमी का परिणाम दुष्टात्माओं को निकालने में असमर्थता हो सकती है। प्रर्थाना विश्वास के बाराबर हो सकती है। प्रार्थना विश्वास की ओर ले जा सकती है।

२) लूका १८:७, ८ – वास्तव में, नियमित प्रार्थना विश्वास से जुड़ी है। प्रार्थना और विश्वास ज़रूरी सहभागी हैं।

ख. प्रार्थना का महत्व।

१) लूका ११:१-१३ - प्रार्थना पर शिक्षण व्यस्त मार्था और उसकी बहन मरियम के बीच के अंतर के संदर्भ में निर्धारित किया गया है। हम प्रार्थना की गतिविधि को प्रतिस्थापित नहीं कर सकते।

२) गतिविधियों के बीच में (सेवकाई में भी) हमें परमेश्वर के साथ प्रार्थना में अकेल होने के लिए समय निकालना चाहिए।

टिप्पणियाँ –

ग प्रार्थना पिता को संबोधित है।

१) मत्ती ७:११ - परमेश्वर हमारा पिता है। वह हमें वह देना चाहता है जो हमारे लिए अच्छा है। यदि यह हमारे लिए भला है और हम इसे मांगे, तो पमेश्वर हमें यह देगा।

२) लूका ११:११-१३ - एक सांसारिक पिता के लिए पुत्र बहुत महत्वूपर्ण होता है। हम अपने स्वर्गीय पिता के लिए कितने और अधिक महत्वपूर्ण क्यों न होंगे? एक सांसारिक पुत्र अपने पिता से भली चीजें मांगता है। हमें कितना और अधिक अपने स्वर्गीय पिता से भली चीजें मांगनी चाहिए?

घ. प्रार्थना का उद्देश्य।

१) लूका ६:१२ . महत्वपूर्ण निर्णय लेने के लिए अधिक प्रार्थना करनी चाहिए।

२) मत्ती २६:४१ और मरकुस १४:३८ - आत्मा तो तैयार है परन्तु शरीर दुर्बल है। अपने आप को शरीर से बचाने और परिक्षा में पड़ने से बचने के लिए, यह आवश्यक है कि हम जागते रहें और प्रार्थना करते रहें। प्रार्थन प्रलोभन से हमारी रक्षा करती है।

३) लूका २२:४० और मत्ती ६:१३ – हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि हम परीक्षा में न पडें।

४) लूका १८:१ – निराशा से बचने के लिए नियमित प्रार्थना का उपयोग किया जा सकता है।

५) मरकुस ९:२९ – दुष्टात्माओं को निकालने के लिए प्रार्थना का उपयोग किया जा सकता है।

६) मत्ती ९:३७, ३८ और लूका १०:२ – महान आज्ञा को पूरा करने के लिए प्रार्थना का उपयोग किया जा सकता है।

७) लूका २१:३४-३६ – प्रार्थना का उपयोग हमें मसीह की वापसी के लिए तैयार होने में मदद के लिए किया जा सकता है।

टिप्पणियाँ –

ङ. प्रार्थना के तरीके।

१) मरकुस ११:२४, २५ – यहाँ हम प्रार्थना की दो आवश्यक जरूरतों को देखते हैं। पहली, दूसरों को क्षमा करें ताकि परमेश्वर आपको क्षमा कर सके और आपकी प्रार्थन सुन सके। दूसरी, विश्वास रखें। विश्वास करें की आपको प्राप्त हो चुका है।

२) मरकुस १:३५ - यीशु के कुछ रीति-रिवाज या अनुशासन थे। यहाँ हम उन्हें प्रातः काल की प्रार्थना के अनुशासन का अभ्यास करते हुए देखते हैं (साथ ही देखें मत्ती १४:२३; मरकुस ६:४६; लूका ६:१२; ९:२८; २२:३९)। हमें अनुशासित प्रार्थना जीवन जीना चाहिए।

३) लूका ११:८-१० - इस खंड का तात्पर्य यह है कि मांगना, और खटखटाना और ढूढना नियमित होना चाहिए। इस खंड के संदर्भ में नियमित प्रार्थना का विचार शामिल है। हमारी प्रार्थना अत्यधिक दोहराई जाने वाली नहीं होनी चाहिए (मत्ती ६:७,८) बल्कि वे नियमित रूप से की जाने वाली होनी चाहिए। खटखटाते रहें जब तक परमेश्वर द्वार न खोले!

४) यूहन्ना १४:१३ - हमारे निवेदन यीशु के नाम में होने चाहिए।

५) लूका २२:४२ - अपने उदाहरण के द्वारा, यीशु हमें परमेश्वर के इच्छा के अनुरूप प्रार्थना करना सिखाते हैं।

६) मत्ती १८:१९ – विश्वासी प्रार्थना में एकसाथ सहमत हो सकते हैं।

७) लूका २:५२ – बच्चों के लिए प्रार्थना करते सयम आप इस वचन का उपयोग एक रूपरेखा के समान कर सकते हैं। उन्हें मानसिक, शारीरिक, सामजिक, और आत्मिक रूप से मसीह में और पिता की ओर बढ़ाने के लिए प्रार्थना करें।

च. प्रार्थना के परिणाम।

१) मत्ती १७:२०, २१ और लूका ९:४१ – प्रार्थना का परिणाम दुष्टात्मओं का निकाला जाना हो सकता है।

२) लूका १८:१ – प्रार्थना का परिणाम निराशा से बचाव हो सकता है।

३) लूका १८:७, ८ – नियमित प्रार्थना का परिणाम परमेश्वर के द्वारा तुरन्त कार्यवाही होता है।

टिप्पणियाँ —

च. प्रार्थना में सफलता।

१) यूहन्ना ९:३१ - परमेश्वर का भय और आज्ञाकारिता प्रार्थना में सफलता की ओर ले जाती है।

२) मत्ती ७:७ - सफलता तब तक संभव नहीं है जब तक हम मांगते नहीं। प्रार्थना में सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि हम कितना प्रार्थना करता है।

३) मत्ती २१:२१, २२ - विश्वास वह सामग्री है जिसके द्वारा प्रार्थना काम करती है।

४) लूका ११:११-१३ - एक सांसारिक पिता अपने पुत्र से प्रेम करता है, इसलिए, उसकी बड़ी इच्छा होती है कि अपने पुत्र के निवेदन का प्रत्युत्तर दे।

क) कितना और अधिक हमारा स्वर्गीय पिता हम से प्रेम करता है?

ख) कितना और अधिक हमारा स्वर्गीय पिता हमें अच्छी वस्तुएँ देने की इच्छा करता है?

ग) कितना और अधिक हमारा स्वर्गीय पिता कर सकता है?

घ) वास्तव में हमारे निवेदनों का उत्तर देने के लिए कितनी और अधिक योग्यता उसके पास है?

५) मत्ती १८:१९ - सफल प्रार्थना और मसीही संगति और एकता के बीच में एक संबंध है।

६) यूहन्ना १५:७ - प्रार्थना मे सफलता काफी हद तक परमेश्वर के साथ हमारे रिश्ते की मजबूती पर निर्भर करती है।

७) यूहन्ना १४:१३ - यीशु के नाम में की गई प्रार्थनाएँ सफल होती है क्योंकि तब पुत्र में पिता की महिमा होती है।

टिप्पणियाँ —

ज. यीशु हमारा उदाहरण है।

१) मरकुस १:३५ - यीशु के कुछ रीति-रिवाज या अनुशासन थे। यहाँ हम उन्हें प्रातः काल की प्रार्थना के अनुशासन का अभ्यास करते हुए देखते हैं (साथ ही देखें मत्ती १४:२३; मरकुस ६:४६; लूका ६:१२; ९:२८; २२:३९)।

२) लूका २२:३१, ३२ - यीशु हमारे लिए मध्यस्ती करते हैं (साथ ही देखें इब्रानियों ७:२५)।

३) मरकुस १४:३६, ३९ - यीशु की अंतिम प्रार्थना है कि परमेश्वर की इच्छा पूरी हो। अनुसरण करने के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण उदाहरण है। हमारी प्रार्थना में ऐसी मनोवृत्ति शामिल होनी चाहिए जो परमेश्वर से गम्भीरता से कह सकेः ''मेरी नहीं परन्तु तेरी इच्छा पूरी हो।''

२. विषय #२: उपवास।

क. मत्ती ९:१४, १५ और लूका ५:३५ - उपवास शोक से साथ जुड़ा है (मत्ती ९:१४, १५) क्योंकि यीशु जा चुके हैं (लूका ५:३५)। यह कहा जा सकता है कि मसीहियों को यीशु की वापसी के लिए उपवास करना चाहिए।

ख. मत्ती १७:२०, २१ – उपवास छुटकारे की सेवकाई में एक महत्वपूर्ण हथियार है।

ग. विषयवस्तु #३: शिष्यत्व।

१. विषय #१: कीमत की गणना।

क. लूका १४:२८ - चेले बनने के लिए हमारी बुलाहट का एक हिस्सा कीमत की गणना करना है।

ख. मत्ती ८:२०. यीशु गतिशील थे। अक्सर उनका कोई ''स्थायी'' घर नहीं था। इससे पहले कि हम उसका अनुसरण करें, वह हमें इस तथ्य के निहितार्थों (कीमत की गणना) पर विचार करने की चुनौती देता है।

२. विषय #२: यीशु का अनुसरण करना।

क. शिष्य होने में शामिल हैः

१) मत्ती १६:२४ और मरकुस ८:३४ - यीशु का अनुसरण करने में स्वयं का इंकार और अपना क्रूस उठाना शामिल है।

२) लूका १४:२७ - जो कोई अपना क्रूस (एक बलिदान बनता) नहीं उठाता और यीशु के पीछे नहीं चलता वह उसका चेला **नहीं हो सकता।**

टिप्पणियाँ –

३) लूका ९:५७, ५८ - यीशु का अनुसरण करने का अर्थ है कुछ भी न रखने के लिए तैयार रहना। सब कुछ परमेश्वर का है। शरीर का कुछ भी नहीं है।

४) लूका १४:३३ - आप तब तक एक चेला नहीं हो सकते जब तक आप अपनी सम्पत्ति पर नियंत्रण नहीं छोड़ते। हमें जानबूझकर सब कुछ परमेश्वर को देने का निर्णय लेना चाहिए। वह नियर्ण करेगा कि हमें इसके साथ क्या करना चाहिए।

५) मत्ती १०:३७ - यीशु का अनुयायी होने के लिए आपको उसे किसी भी चीज या किसी से भी अधिक प्रेम करना चाहिए।

६) यूहन्ना १३:३५ – यीशु के चेलों को यीशु के अन्य चेलों से प्रेम करना चाहिए।

७) यूहन्ना ८:३१ - एक चेला होने के लिए आपको बाइबल का अनुसरण करना चाहिए।

ख. एक चेला होने में रूकावट।

१) मत्ती ९:१२, १३ – यदि आप पहले यह स्वीकार नहीं कर सकते कि आप बीमार (ज़रूरत में) हैं, तो आप यीशु के चेले नहीं बन पाएंगे।

२) मत्ती १६:२३ - शैतान का हमारे विरूद्ध सबसे बड़ा हथियार हमें मनुष्य के हितों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रोत्साहित करना है। यह हमारे लिए दुःखों और कठिनाईयों का इंकार करने का कारण हो सकता है जो हमें मसीह से दूर ले जा सकता है। आरामदायक जीवन की पेशकश शैतान के सबसे अधिक इस्तेमाल किए जाने वाले हथियारों में से एक है।

३) मत्ती १८:८, ९ - हमें एक चेला होने में किसी भी बाधा के विरूद्ध ''आक्रामक'' होना चाहिए। मसीह में और परमेश्वर के निकट आगे बढ़ने के लिए जो कुछ भी आवश्यक हो वह करें।

यीशु की शिक्षाएँ III

टिप्पणियाँ –

ग. यीशु का अनुयायी होने के नाते।

१) मत्ती १९;१७, २१ – लोग हमेशा ''भले'' होने के तरीकों की खोज में रहते हैं जिससे उन्हें स्वर्ग में प्रवेश मिले।

क) हालाँकि, चूँकि एक ही है जो भला है, इसलिए एक मात्र ''भला काम'' जो हम कर सकते हैं वह है स्वयं का इंकार करना और यीशु का अनुसरण करना।

ख) यीशु इस बात का इंकार नहीं करता कि वही वह एकमात्र भला व्यक्ति है; वास्तव में वह अविश्वासियों को डांटने के लिए इस काटाक्ष का प्रयोग करने के द्वारा इस बात की घोषणा करता है कि वही वह एकमात्र व्यक्ति है।

२) मत्ती १०:२४ - हमें याद रखना चाहिए कि जो अनुसरण करता है वह उससे ऊपर नहीं हो सकता जिसका अनुसरण किया जाता है।

ङ. यीशु का अनुसरण करने का परिणाम।

१) मरकुस ४:११ - जिन्हें रहस्यों को जानने की अनुमति है वे लोग वे हैं जो यीशु के ''पीछे'' हैं। अर्थात्, वे जो उसका अनुसरण करते और उसके साथ संबंध में हैं वे प्रकाशन प्राप्त करते हैं। हाँ, ज्ञान और प्रकाशन यीशु के साथ समय बिताने के माध्यम से उपलब्ध है।

२) लूका १८:२९, ३० - यीशु का अनुसरण करने के बड़े प्रतिफल हैं। जिनमें सबसे बड़ा परमेश्वर को जानना है (याद रखें यूहन्ना १७:३ में ''अनंत जीवन'' परमेश्वर को जानने के रूप में परिभाषित है)। मत्ती ४:१९ और मरकुस १:१७ - यीशु को जानने का परिणाम सुसमाचार प्रचार है।

३) मरकुस ३:१४ - यीशु के **साथ** रहना यीशु के कार्यों को करना जारी रखता है। निहितार्थ यह है कि यीशु के साथ होने (उसका अनुसरण) का परिणाम सुसमाचार प्रचार है।

च. दूसरों को चेला बनाना।

१) यूहन्ना ३:२२ - दूसरों को चेला बनाने का सबसे आवश्यक कारक उनके साथ समय बिताना है।

२) यूहन्ना १०:५ – लोग उसी आवाज का अनुसरण करते हैं जिसे वे जानते हैं। यह चेला बनाने का महत्वपूर्ण सिद्धांत है और फिर से यह उन लोगों के साथ बहुत सा समय बिताने की ओर संकेत करता है जिन्हें आप चेला बना रहे हैं।

टिप्पणियाँ –

३. विषय #३: परमेश्वर की अगुवाई।

क. यूहन्ना १०:५ - हम परमेश्वर की अगुवाई में चल सकते हैं क्योंकि हम उसकी आवाज को पहचानते हैं।

ख. यूहन्ना १२:२८ - परमेश्वर लोगों से सुनने योग्य आवाज में बोल सकते हैं, हालाँकि यह आम नहीं है।

ग. लूका ९:१४ - आत्मा की अगुवाई और संगठन एक साथ मौजूद है।

घ. मत्ती ४:१ - आत्मा हमेशा हमारी अगुवाई उन बातों की ओर नहीं करती जिन्हें यह संसार ''भला'' कहता है। वह हमारी अगुवाई परीक्षा और दुःखों की ओर कर सकता है।

V. कलीसिया और सेवकाई।

क. विषयवस्तु #१: कलीसिया और अध्यादेश।

१. विषय #१: कलीसिया का स्वभाव।

क. मत्ती १६:१८ – कलीसिया इस तथ्य पर निर्मित है कि यीशु ही मसीह है। यह इस सत्य के प्रकाशन और अंगीकार पर निर्मित है। कलीसिया **उद्धार** पर निर्मित है।

ख. यूहन्ना २०:२१, २२ – सुसमाचार प्रचार की आज्ञा के संदर्भ में यीशु नई कलीसिया के ऊपर फूकते है - प्रेरितों को उनके प्रभु के उदाहरण के अनुसार भेजा गया। वास्तव में, प्रभु यीशु मसीह की कलीसिया संसार में भेजी गई है।

ग. यूहन्ना १३:३५ - कलीसिया के सदस्यों को उनके आपसी प्रेम के द्वारा पहचाना जा सकता है।

घ. यूहन्ना १७:१०, ११ - कलीसिया का ढ़ाँचा वह संबंध है जो त्रिएकता के बीच है।

ङ. मत्ती २३:८-१० - कलीसिया में पद का प्रयोग अतिरिक्त आदर पाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। इसप्रकार, रब्बी, पिता और शिक्षक जैसे शीर्षकों से बचा जाना चाहिए। जो अगुवे हैं वे साथ ही साथ भाई बहन भी हैं (देखें पद ८)।

टिप्पणियाँ —

च. लूका ५:३९ - यहाँ हम एक सिद्धांत देख सकते हैं जो यह बताता है कि क्यों कुछ कलीसियाओं में प्रासंगिकता और जीवंतता नहीं है। आत्मा की पुनरोद्धार उपस्थिति के स्थान पर रूप और संरचना को बाहर निकालने की अनुमति है।

छ. यूहन्ना २०:२३ - कलीसिया को पापों की क्षमा की घोषणा करने का अधिकार है। मसीह, क्षमा का स्त्रोत, अपनी देह के माध्यम से क्षमा की घोषणा करता है।

२. विषय #२: कलीसिया अनुशासन।

क. लूका ३:१६, १७ – ऐसा लगता है कि यीशु जो बपतिस्मा देता है, उसमें व्यक्ति को यीशु (पवित्र आत्मा) के पास आने का अधिकार देने के साथ-साथ, न्याय, शिष्यत्व या परिष्कृत (आग) करना शामिल है।

ख. मत्ती १८:१५.१७ – कलीसिया अनुशासन के तीन चरण हैं।

१) पहला, आपको अकेले जाना चाहिए और गलती करने वाले का सामना करना चाहिए।

२) दूसरा, आपको अपने साथ दो या तीन को ले जाना चाहिए।

३) तीसरा, आपको मुकदमे को कलीसिया के सामने लाना चाहिए। यदि वह व्यक्ति इसके बाद भी पश्चाताप न करें, तब उस व्यक्ति को पापी के समान (बहिष्कृत कर दिया) जानें। याद रखें, पापी छुटकारे के उम्मीदवार हैं।

ग. लूका १७:३ - यदि पाप है, तो सुधार होना चाहिए।

घ. मत्ती ५:२९, ३० - यहाँ हमारे पास एक सिद्धांत है जो कलीसिया अनुशासन पर लागू हो सकता है (''देह'' के विषय में शब्दावली पर ध्यान दें)। यदि कुछ चीज जो पूरी देह को नाश करेगी तो पूरी देह को बचाने के लिए उसे काट कर निकाल देना चाहिए। इस सिद्धांत के कारण आंशिक रूप से बहिष्करण मान्य है।

ङ. मत्ती १८:१८ - कलीसिया अनुशासन के परिणाम स्वर्ग में होने वाली घटनाओं से जुड़े हैं।

टिप्पणियाँ –

३. विषय #३: बपतिस्मा और प्रभु भोज।

क. लूका ३:१६, १७ - ऐसा लगता है कि यीशु जो बपतिस्मा देता है, उसमें व्यक्ति को यीशु (पवित्र आत्मा) के पास आने का अधिकार देने के साथ-साथ, न्याय, शिष्यत्व या परिष्कृत (आग) करना शामिल है।

ख. लूका २४:३१, ३५ - यीशु रोटी तोड़ते हुए दिखाई दे रहे हैं। रोटी का तोड़ना (अंतिम भोज संस्कार का अर्थ है ''धन्यवाद देना'') आराधना की एक क्रिया है। इस प्रकार, सिद्धांत यह है कि विश्वासी यीशु को एक बहुत ही वास्तविक तरीके से अनुभव करते हैं जब वे उसकी आराधना करते और प्रभु भोज में भाग लेते हैं।

ख. विषयवस्तु #२: सेवकाई।

१. विषय #१: सेवकाई।

क. सेवकाई के लिए तैयारी।

१) मरकुस ३:१४ – यीशु के साथ समय बिताना सेवकाई की तैयारी का सबसे आवश्यक भाग है।

२) लूका ५:१६ – सेवकाई के बीच में हमें परमेश्वर के साथ समय बिताना चाहिए।

३) लूका १०:४१, ४२ – जो काम हम परमेश्वर के लिए करते हैं (सेवकाई) हम उन्हें अनुमति नहीं दे सकते कि वे हमें परमेश्वर के साथ समय बितान से विचलित करें।

४) लूका ६:४२ – किसी और चीज का सामना करते समय, हमें पहले स्वयं का सामना करके खुद को तैयार करना चाहिए।

ख. सेवकाई निमार्ण में (देखें लूका १६:१०) परमेश्वर हम पर बड़ी जिम्मेदारियों के लिए भरोसा करेगा जब हम छोटी जिम्मेदारियों में अपनी विश्वासयोग्यता को साबित करेंगे। सेवकाई का निर्माण विश्वासयोग्ता पर किया जाता है।

टिप्पणियाँ —

ग. सेवकाई के पात्र।

१) यूहन्ना ३:२७ - अंततः, सेवकाई में सफलता परमेश्वर पर निर्भर करती है क्योंकि एक व्यक्ति तब तक प्राप्त नहीं कर सकता (जो कि उसकी ज़िम्मेदारी है) जब तक पहले उसे दिया न जाए (परमेश्वर की ज़िम्मेदारी)। परमेश्वर लोगों के **माध्यम से** सेवकाई का कार्य करते हैं।

२) यूहन्ना ५:१९ - यीशु ने वह देखा जो पिता कर रहा था। वह पिता की इच्छा का पात्र था।

३) लूका १०:१६ - किसी मसीही की घोषणा को सुनना या अस्वीकार करना स्वयं यीशु की घोषणा को सुनने या अस्वीकार करने के समान है। हम यीशु के प्रतिनिधि हैं। हम ऐसे पात्र हैं जिनके **माध्यम से** वह काम करता है।

घ. यीशु की सेवकाई की निरंतरता।

१) मरकुस १६:१७, १८ - क्योंकि हम उसके पात्र हैं, यीशु की सेवकाई हमारे **द्वारा** जारी रहती है। इस प्रकार, जो चिन्ह् उसकी सेवकाई में हुए हमारी सेवकाई में भी होंगे।

२) यूहन्ना १४:१२ - हम उनसे भी बड़े काम करेंगे जो उसने किये।

३) मरकुस ९:२९. हम केवल यह नहीं कह सकते कि हमारी व्यक्तिगत सेवकाई यीशु की सेवकाई के बराबर या उससे बड़ी है जब वह इस पृथ्वी पर था। उदाहरण के लिए, इस मामले में, यीशु ने आरम से दुष्टात्मा को बाहर निकाल दिया। हालाँकि, उसने अपने चेलों से कहा कि वे बहुत प्रार्थना के बाद ही ऐसा कर सकते हैं।

ङ. पासबानी।

१) यूहन्ना २१:१५ - यीशु के लिए हमारे प्रेम को उन लोगों के लिए अपना जीवन देने की हमारी इच्छा से मापा जा सकता है जो यीशु के लोग हैं (साथ ही यूहन्ना १५:१३ भी देखें)। यह भी पासबानी के समान प्रतीत होता है।

२) यूहन्ना १०:११ - पासबानों को अपनी भेड़ों के लिए अपना जीवन देना चाहिए।

टिप्पणियाँ —

३) यूहन्ना १०:१७ - जीने के लिए मरने का सिद्धांत एक पासबान के जीवन में देखा जा सकता है जो अपने जीवन को फिर से वापस पाने के लिए अपनी भेड़ों के लिए अपने प्राण देता है।

४) यूहन्ना १०:१२, १३ - एक पासबान को अपनी बुलाहट को एक ''नौकरी'' या ''कैरियर'' के रूप में सोचने की ज़रूरत नहीं है जिसके लिए उसे वेतन मिलता है - यह और भी बहुत कुछ है! वह अपनी भेड़ों का चरवाहा होना चाहिए। वह ''किराए पर लाया हुआ नौकर'' नही हो सकता।

च. सेवकों को मुआवजा।

१) यूहन्ना १०:१२, १३ . एक पासबान को अपनी बुलाहट को एक ''नौकरी'' या ''व्यवसाय'' के रूप में सोचने की ज़रूरत नहीं है जिसके लिए उसे वेतन मिलता है - यह और भी बहुत कुछ है! यदि वह केवल वेतन के द्वारा प्रेरित होता है तो कठिनाई आने पर वह छोडने के लिए इच्छुक है। वह अपनी भेड़ों का चरवाहा होना चाहिए। वह ''किराए पर लाया हुआ नौकर'' नहीं हो सकता।

२) लूका १०:४-७ - मज़दूर अपनी मजदूरी का हकदार है। हालाँकि, सेवकों को यह समझना चाहिए कि यह बड़ी वेतन पाने को उचित ठहराने का तरीका नहीं है। वास्तव में, यह विचार अपने साथ **कुछ भी न** ले जाने के संदर्भ में उत्पन्न होता है जब वे सेवकाई के लिए जाते हैं। यहाँ विचार यह है कि एक सेवक अपनी **आवश्यकताओं** की पूर्ति के योग्य है (''खाने और पीने'' शब्द पर ध्यान दें)।

छ. शिक्षा।

१) यूहन्ना ७:१६ - सफल शिक्षा की सेवकाई की कुंजी इस बात की समझ है किः यह **आपकी** शिक्षा नहीं, बल्कि परमेश्वर की शिक्षा है।

२) लूका ६:४० - एक शिक्षक द्वारा पूर्ण प्रशिक्षण उस शिक्षक का पुनरूत्पादन करता है।

ज. विस्तार (देखें लूका ६:४०)। विस्तार होने का यह नियम सभी सेवकाईयों के लिए सत्य है। सेवक और सेवकाईयाँ पुनरूत्पादित और विस्तृत होनी चाहिए (देखें इफिसियों ४:११,१२)।

टिप्पणियाँ —

झ. सेवकाई के परिणाम।

१) यूहन्ना ४:३४ - भोजन ऊर्जा और संतुष्टि का प्रतीक हो सकता है। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि सेवकाई का परिणाम जीवन में ऊर्जा और संतुष्टि होता है।

२) लूका ६:४३, ४४ -. सेवकाई के परिणाम (फल) स्वयं सेवकाई की प्रकृति के अनुरूप हैं।

ञ. सेवकाई करने की हमारी ज़िम्मेदारी।

१) लूका १०:२९-३७ - हम अक्सर इस परिभाषा को सीमित करने के द्वारा कि हमारा पड़ोसी कौन है, अपने आप को सही ठहराने का प्रयास करते हैं। हालाँकि, यीशु हमें एक स्पष्ट परिभाषा प्रदान करते हैं जिसकी बहुत व्यापक सीमाएँ हैं। हमारा पड़ोसी वह है जिसे दया की ज़रूरत है ।

२) मसीही होने के नाते, हमें दूसरों की जरूरतों का प्रत्युत्तर देना चाहिए। हमें उनकी सेवकाई करनी चाहिए जो ज़रूरतमंद हैं।

ट. सेवकाई में सामर्थ्य।

१) लूका ८:४६ - **हो सकता है** (यद्यपि यह आवश्यक नहीं है और हमें कहना चाहिए कि यह सामान्य नहीं है) कि एक शरीरिक अनुभूति हो जब परमेश्वर विश्वासियों को अपनी सामर्थ्य के सेवकों के रूप में इस्तेमाल करता है।

२) यूहन्ना १८:६ - कई विश्वासी पवित्र आत्मा की शक्ति के परिणाम स्वरूप ''आत्मा में मारे गए'' होने की गवाही देते हैं। शायद इस खंड में यही हुआ (२ इतिहास ५:१४; मत्ती २८:४; प्रेरितों ९:४, २२:७; प्रका. १:१७ के संबंध में इस संभावना पर विचार करें)।

१. आराम और सेवकाई (देखें मरकुस ६:३१)। सेवकाई का एक भाग इससे अलग होना और आराम करना है ताकि आप नियमित रूप से प्रभावशाली रह सकें। एक थका हुआ सेवक किसी की मदद नहीं कर सकता!

टिप्पणियाँ —

२. विषय #२: नेतृत्व और सेवा।

क. अगुवा एक सेवक है।

१) मत्ती २०:२५-२७ और मरकुस ९:३५ – परमेश्वर के राज्य में महानता (अगुवापन) अधिकार का प्रयोग करने के बराबर नहीं है। यह अपने आप को ''दूसरों पर थोपने'' के द्वारा प्रगट नहीं करता।

क) परमेश्वर के राज्य में महानता (अगुवा होना) दास होने के बराबर है (देखें मत्ती २३:११)। यह अपने आप को दूसरों की सेवा करने के द्वारा प्रगट करता है।

ख) पहला (अगुवा) सबसे अंतिम होगा (सब का दास)।

२) लूका २२:२६, २७ - फिर से सिद्धांत स्पष्ट रूप से कहा गया है। अगुवा दास है।

ख. यीशु हमारा आदर्श है।

१) यूहन्ना १०:१-४ - यहाँ हम अगुवेपन के कई सिद्धांतों को देख सकते हैं।

क) पहला, पद २ में हम देखते हैं कि हम केवल यीशु (द्वार) के **द्वारा** अगुवाई कर सकते हैं।

ख) दूसरा, मसीह में अगुवेपन के तीनों कार्यालयों को देख सकते हैं।

(१) यीशु ने एक याजक के समान अगुवाई की (पद ३: ''वह अपनों को नाम लेकर बुलाता है।'')।

(२) उसने एक भविष्यद्वक्ता के रूप में अगुवाई की (पद ३: ''वह उन्हें बाहर ले जाता है।'')।

(३) उसने एक राजा के रूप में अगुवाई की (पद ४: ''वह अपना सब कुछ देता है;'' सब कुछ देने के लिए यूनानी शब्द का अर्थ है बाहर निकालना और इसमें बल या अधिकार का विचार शामिल है)।

ग) तीसरा, यीशु उनके आगे चलता है जिनकी वह अगुवाई करता है, उनके पीछे नहीं (पद ४)। वह उदाहरण के द्वारा अगुवाई करता है। वह अपने अनुयायियों को साथ खींचता है, वह उन्हे धक्का नहीं देता।

टिप्पणियाँ —

२) यूहन्ना १३:१३, १४ - यीशु हमारा आदर्श और मानक हैं। चूंकि वह हमारा प्रभु है (हम उससे नीचे हैं) और चूंकि सब मुनष्यों की सेवा की है, यह केवल इतना ही समझ में आता है कि हमें दूसरों की सेवा करनी चाहिए।

ग. सेवा क्या है?

१) लूका १०:३८-४२ - सच्ची सेवा वह नहीं है जिसे **आप** करना चाहते हैं (सशर्त सेवा), बल्कि यह वह करना है जिसकी आवश्यकता है और जिसकी आज्ञा दी गई है (बिना शर्त सेवा)।

२) मत्ती २०:२८ - सेवा या सेवा करना दूसरों के लिए आपना जीवन देना है।

३) मरकुस १०:४५ - परमेश्वर के राज्य में बड़ा होने के लिए आपको सेवा करनी होगी। सेवा में अपने आप को दूसरों की फिरौती में देने के लिए तैयार रहना शामिल है। अर्थात्, इसमें अपने जीवन को दूसरों के लिए देने के लिए इच्छुक रहना शामिल है।

घ. सेवा के लिए प्रेरणा। (देखें यूहन्ना १३:१, ३)। हमें परमेश्वर में सुरक्षा के कारण दूसरों की सेवा करने में सक्षम होना चाहिए। हम **जानते हैं** कि हम कहाँ जा रहे हैं (पद १), परमेश्वर में हमारे पास क्या है (पद ३), और यह कि हमारा उसके साथ संबंध है (पद ३)। यह सुरक्षा हमें सेवा करने के लिए प्रेरित करती है। प्रेम भी हमें प्रेरित करने वाला होना चाहिए (पद १)।

ङ. नकारात्मक अगुवापन या सेवा।

१) मत्ती २३:१३ और लूका ११:५२ - पाखंड लोगों को परमेश्वर के राज्य से बाहर रखता है।

२) लूका ६:३९ - एक अंधा अगुवा अपने साथ अपने अनुयायियों के भी गिरने का कारण है।

३) मत्ती २३:८-१० . कलीसिया में पद का प्रयोग अतिरिक्त आदर पाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए, रब्बी, पिता, और शिक्षक जैसे शीर्षकों से बचना चाहिए। वे जो अगुवे हैं साथ ही साथ भाई और बहन भी हैं (देखें पद ८)। दुर्भाग्य से, कुछ अगुवे अपने पद का इस्तेमाल दूसरों को गुमराह और नियंत्रित करने के लिए करते हैं।

४) यूहन्ना १६:२ - वे लोग जो मसीहियों को मारते हैं, समझेंगे कि हम परमेश्वर की सेवा कर रहे हैं। अर्थात्, वे धार्मिक कारणों के लिए मारेगें। बेशक, यीशु भी इसी तरह मारे गए।

टिप्पणियाँ —

च. अधिकार (देखें मरकुस १०:४२-४४)। संसार में, पद के कारण अधिकार लिया और प्रयोग किया जाता है। परमेश्वर के राज्य में अधिकार कार्य के कारण (सेवा के कारण) अर्जित और प्राप्त किया जाता है।

३. विषय #३: विस्तार ।

क. यूहन्ना १२:२४ - मृत्यु (स्वयं के लिए) परमेश्वर के राज्य में उत्पादन की प्रक्रिया शुरू करती है। विस्तार होने की शुरूआत मृत्यु से होती है।

ख. लूका ८:१५ - फल लाना (विस्तार होना) धीरज और दृढ़ता से जुड़ा है। विस्तार होने में समय लगता है।

ग. लूका १६:१० - परमेश्वर बड़ी जिम्मेदारियों के लिए हम पर भरोसा करेगा जब हम छोटी जिम्मेदारियों में अपनी विश्वास योग्यता साबित करेंगे। सेवकाईयों का निर्माण विश्वासयोग्यता पर किया जाता है। सेवकाईयाँ विश्वासयोग्यता के द्वारा विस्तृत होती है।

घ. लूका ६:४० - एक शिक्षक द्वारा पूर्ण प्रशिक्षण उस शिक्षक का पुनरूत्पादन करता है।

ग. विषयवस्तु #३: देना।

१. विषय #१: देना।

क. देना संबंधित हैः

१) मरकुस १०:२१ और मत्ती ६:४, २० - पृथ्वी पर देना स्वर्ग में प्राप्त करने (पुरस्कार) से जुड़ा है।

२) लूका १२:३२, ३३ - देना परमेश्वर के राज्य से जुडा हैं।

ख. देने का उद्देश्य।

१) मत्ती २५:४० - दूसरों को देने का उद्देश्य परमेश्वर को देना है।

२) लूका ८:३ - सुसमाचार की घोषणा को दूसरों के निजी दान द्वारा समर्थित किया जा सकता है। हमें सुसमाचार फैलाने में मदद करने के लिए देना चाहिए।

टिप्पणियाँ –

ग. देना परिणाम हैः

१) लूका ३:१०-१४ - देना पश्चाताप का परिणाम हो सकता है (देखें लूका १९:८)।

२) यूहन्ना ३:१६ - देना प्रेम का परिणाम है।

घ. देने के कारण।

१) मत्ती १०:८ - हमें देना चाहिए क्योंकि परमेश्वर ने हमें दिया है। हमने परमेश्वर से पाया है। अब हम दूसरों को देने के लिए बाध्य हैं।

२) लूका ६:३५ - दूसरों को देना उनके चरित्र या इस बात से निर्धारित नहीं होना चाहिए कि वे इसकी कितनी सराहना करते हैं। देना बिना शर्त होना चाहिए।

३) लूका ६:३० - यीशु के अनुसार, देने का कारण यह है कि किसी ने आपसे देने के लिए कहा है।

४) लूका १२:४२ - ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु देने में उचित समय के महत्व पर ज़ोर देते हैं।

ङ. देने को कैसे मापा जाता है (देखें लूका २१:१-४ और मरकुस १२:४१-४४)? देना इस बाता से मापा जाता है कि आपको उसके लिए क्या कीमत चुकानी पड़ी।

च. देने के पुरस्कार।

१) मरकुस १०:२१ और मत्ती ६:४, २० - पृथ्वी पर देने का परिणाम स्वर्ग में प्राप्त (पुरस्कार) करना है।

२) लूका १८:२२ - गरीबों को देने का परिणाम स्वर्ग में धन (पुरस्कार) मिलना है।

छ. देना सेवाकाई का केंद्र बिंदु है (देखें यूहन्ना १०:११) - पासबानों को अपनी भेड़ों के लिए अपने प्राण देने चाहिए।

२. इस विषयवस्तु में केवल एक ही विषय है।

टिप्पणियाँ —

घ. विषयवस्तु #४: सुसमाचार प्रचार।

१. विषय #१: सुसमाचार प्रचार।

क. सुसमाचार प्रचार के लिए प्रेरणा।

१) लूका ४:४३ - यीशु का उद्देश्य परमेश्वर के राज्य का प्रचार करना था। हम प्रेरणा पाते हैं क्योंकि यह उद्देश्य हम में जारी है।

२) मत्ती ५:१५ - हम सुसामचार प्रचार के लिए बनाए गए हैं जैसे कि एक दीपक उजाला देने के लिए बनाया जाता है। एक ज्योति जो प्रकाश नहीं देती, अपना उद्देश्य खो चुकी है। एक विश्वासी जो सुसमाचार प्रचार नहीं करता, अपना उद्देश्य खो चुका है। सुसमाचार प्रचार की प्रेरणा विश्वासियों के नए जीवन का स्वभाव है।

३) लूका ८:१६ - हम सुसमाचार प्रचार करने के लिए प्रेरित हैं क्योंकि हम फल लाना चाहते हैं।

४) लूका १२:७-९ - परमेश्वर की संप्रभुता को जानना सुसमाचार प्रचार की प्रेरणा हो सकती है।

ख. सुसमाचार प्रचार की आवश्यकता।

१) मत्ती २४:१४ - यीशु की वापसी से पहले सारी जातियों को सुसमाचार प्रचार किया जाना चहिए।

२) यूहन्ना २०:२१, २२ - यीशु ने नई कलीसिया के ऊपर सुसमाचार प्रचार की आज्ञा के संदर्भ में फूंका - प्रेरितों को अपने प्रभु के उदाहरण के समान बाहर भेजा गया। वास्तव में प्रभु यीशु की कलीसिया संसार में **भेजी गई है।**

३) मत्ती ९:३७, ३८ और लूका १०:२ - सुसमाचार प्रचार आवश्यक है क्योंकि बहुत से ऐसे लोग हैं जो परमेश्वर के राज्य के लिए चुने जाने के लिए परिपक्व हैं।

टिप्पणियाँ —

ग. सुसमाचार प्रचार परिणाम हैः

१) यूहन्ना १७:२१ - परमेश्वर को खोजने का परिणाम संसार को यह गवाही देना है कि यीशु ही परमेश्वर है। सुसमाचार प्रचार परमेश्वर को जानने का परिणाम है।

२) मत्ती ४:१९ और मरकुस १:१७ - सुसमाचार प्रचार यीशु का अनुसरण करने का परिणाम है।

३) मत्ती १०:५ - सुसमाचार प्रचार यीशु के द्वारा बुलाये और निर्देशित किए जाने का परिणाम है।

घ. सुसमाचार प्रचारक का पद।

१) लूका १०:१६ - सुसमाचार प्रचारक यीशु का प्रतिनिधि है।

२) मरकुस ४:२६-२९ - सुसमाचार प्रचारक की ज़िम्मेदारी (पद) ''फसल पैदा करना'' नहीं है (व्यक्ति को बचाना और उसका हृदय परिवर्तन करना)। उसके पद में प्रचार करना और फसल काटना शामिल है। परिणाम परमेश्वर की ज़िम्मेदारी है।

३) मरकुस ४:३०-३२ - लोगों को सुसमाचार प्रचार में प्रभावशाली होने के लिए बड़े प्रचारक होने की आवश्यकता नहीं। परिणाम प्रचारक से अधिक मिट्टी की दशा पर निर्भर करते हैं। परमेश्वर तैयार करता है और मिट्टी की तैयारी पर संप्रभु है। कुंजी परमेश्वर है, प्रचारक नहीं (देखें १कुरि. ३:७)।

ङ. सुसमाचार प्रचार के तरीके।

१) सुसमाचार प्रचार का सर्मथन (देखें लूका ८:३) - सुसमाचार की घोषणा को दूसरों के निजी दान द्वारा समर्थित किया जा सकता है। हमें सुसमाचार को फैलाने में मदद करने के लिए देना चहिए।

२) सुसमाचार प्रचारकों का दृष्टिकोण (देखें मत्ती १०:१६)। धार्मिक समुदाय के प्रति सुसमाचार प्रचारकों के दो दृष्टिकोण होने चाहिए। उन्हें सांप के समान बुद्धिमान (चतुर, चालाक, धूर्त) होना चाहिए, और कबूतर के समान भोले (धीरजवंत, विनम्र, विश्वासयोग्य) होना चहिए।

३) हमें किसकी सेवा करनी चाहिए (देखें लूका १४:१८-२१)? वे लोग जो ज़रूरतमंद हैं सेवक की प्राथमिकता हैं।

टिप्पणियाँ —

४) सुसमाचार प्रचार के लिए तैयारी (देखें लूका १०:१,९) - चिन्ह और चमत्कारों के साथ (पद ९) परमेश्वर के राज्य की घोषणा करने के लिए मजदूरों को सुसमाचार प्रचार से पहले (पद १) एक स्थान पर जाना चाहिए।

५) सुसमाचार प्रचार का केंद्र बिंदु।

क) मत्ती ९:१२, १३ - उन लोगों पर ध्यान दें जो स्वीकार करते हैं कि वे ज़रूरतमंद हैं।

ख) मत्ती २६:२८ - नई वाचा का प्रमुख मुद्दा क्षमा है। इस प्रकार, सुसमाचार प्रचार में हमारा ध्यान क्षमा की पेशशक करने पर होना चाहिए। लोगों को इस प्रशन के साथ चुनौती देंः **क्या आपको क्षमा किया गया है?**

ग) यूहन्ना १२:३२ - यीशु केंद्र होना चाहिए। वास्तम में, जब हम उसे ऊँचा उठाते हैं तो लोग उसकी ओर खिंचे चले आते हैं।

६) सुसमाचार प्रचार की शैली (देखे लूका १४:२३)। सुसमाचार प्रचार एक संदेश की घोषणा से अधिक हो सकता है और होना चाहिए। पौलुस ने वाद-विवाद किया और आश्वस्त किया (उदाहरण के लिए प्रेरितों ९:२९; १७:१७)। यीशु विवश करने के लिए कहते हैं (दृढ़ता से आग्रह)।

७) सुसमाचार प्रचार की प्रक्रिया (देखें यूहन्ना ४:३९-४२)। उत्तरदाता दूसरे व्यक्ति की गवाही में विश्वास करते हैं। यह उनके अपने व्यक्तिगत अनुभव के कारण विश्वास की ओर ले जाता है।

८) वेदी की बुलाहट। एक सामूहिक प्रचार तकनीक जहाँ लोग एक सभा के सामने-वेदी के पास-सार्वजनिक गवाही और व्यक्तिगत परामर्श और प्रार्थना के लिए इक्ट्ठा होते हैं।

क) मत्ती १०:३२-३६; लूका ९:२६; १२:८, ९ - यद्यपि वेदी पर बुलाना कई विधियों में से केवल एक है जिसका उपयोग किसी को मसीह के लिए निणर्य लेने के लिए चुनैती देने के रूप में किया जाता है, अगला सिद्धांत इसे एक वैध विधि बनाता है।

ख) लूका १२:८, ९ - यीशु के लिए एक सार्वजनिक निर्णय लेने के लिए नए विश्वासियों को चुनौती देना महत्वपूर्ण है।

९) एकता (देखें यूहन्ना १७:२३)। एकता के बीच प्रभावशाली सुसमाचार प्रचार होता है।

टिप्पणियाँ —

च. सुसमाचार प्रचार के परिणाम।

१) लूका ११:४५ - सुसमाचार प्रचार पाखंड और अपमान को उजागर कर सकाता है और धार्मिक लोगों को क्रोधित कर सकता है।

२) यूहन्ना ४:३६ - सुसमाचार प्रचार का परिणाम अनंत मजदूरी है।

छ. मिशन।

१) लूका १०:४-७ - मज़दूर अपनी मज़दूरी का हकदार है। हालाँकि, सेवकों को यह समझना चाहिए कि यह बड़ी तनख्वाह पाने को जायज ठहराने का तरीका नहीं है। वास्तव में, यह विचार अपने साथ कुछ भी न ले जाने के संदर्भ में उत्पन्न होता है जब वे सेवकाई के लिए जाते हैं। यहाँ विचार यह है कि एक सेवक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य है (''खाने और पीने'' शब्द पर ध्यान दें)।

२) मत्ती २८:१८ - यीशु के पास स्वर्ग और पृथ्वी का **सारा** अधिकार है। यह मिशनरियों को राष्ट्रों में जाने का अधिकार देता है।

३) मत्ती २८:२० - जो लोग प्रभु के मिशन में भाग लेते हैं, वे उसकी निरंतर उपस्थिति के प्रति आश्वस्त हो सकते हैं।

४) लूका ४:२४-२७ - भविष्यवाणी की सेवकाई राष्ट्रों के बीच सबसे प्रभावशाली प्रतीत होती है क्योंकि एक भविष्यद्वक्ता का उसके अपने लोगों के द्वारा स्वागत नहीं किया जाता।

पाठ्यक्रम निष्कर्षः

यह याद रखें कि इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य ''मसीहियत'' नामक अध्ययन क्षेत्र के लिए नये नियम की सुसमाचार की पुस्तकों से केवल एक सर्वेक्षण है। प्रत्येक विषय स्वयं एक संपूर्ण पाठ्यक्रम के भीतर गहन अध्ययन में शामिल हो सकता है। आपको इस पाठ्यक्रम को अपनी शिक्षा की सेवकाई के लिए एक संसाधन के रूप में उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

यीशु की शिक्षाएँ III

टिप्पणियाँ –